प्राचीन कथा विशेषांक

नंदन

नई पीढ़ी के निर्माण का मासिक



अप्रैल, १९८९

रु. ३.५० पै.

डीएवीपी 780(48)88

डायमंड कामिक्स में

400 वां अंक

जिसका इंतजार था - कार्टूनिस्ट प्राण का

चाचा चौधरी राका से मुठभेड़



खूंखार राका फिर आ रहा है। उसने वैद्यराज चक्रमाचार्य की अद्भुत दवाई पी रखी है, जिससे वह मर नहीं सकता। उसके अत्याचार और तबाही से चारों तरफ कोहराम मचा है। कम्प्यूटर से तेज दिमाग वाले चाचा चौधरी और शक्तिशाली साबू के सामने राका एक चुनौती बनकर खड़ा है।





डायमंड कामिक्स प्रा.लि.
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

डायमंड कामिक्स डाइजेस्ट में

दशावतार	12.00	लम्बू मोटू–V	12.00
चाचा चौधरी VI	12.00	महाबली शाका III	12.00

नई बाल पॉकेट बुक्स

रहस्य और रोमांच से भरपूर पॉकेट बुक्स

चाचा चौधरी और श्री डब्लू	3.00
बिल्लू और बुलबुल का बाग	3.00
पलटू और जादूगर गोगी	3.00
पिंकू और जंगल के शैतान	3.00
मीकू और बंदर का ज्योतिष	3.00
महाबली शाका और कबीलों का दुश्मन	3.00
मोटू पतलू और जादूगर काला मुंडा	3.00
फौलादी सिंह और सुपर क्वीन	3.00


आपके फैमिली प्रकाशक
पुस्तक महल की रिकार्ड सेल पुस्तकें......
जी हां, आम विषयों पर सबसे अधिक और सबसे जल्द बिकने वाली पुस्तकें
पुस्तक महल ने ही प्रकाशित की है और इसकी वजह है—सही दामों में सही माल
SELF LETTER DRAFTING COURSE
COMPUTER FOR BEGINNERS
101 दिमागी कसरतें
101 मैजिक ट्रिक्स
योगासन साधना
मूल्य: रु. 30/-
मूल्य: रु. 20/-
मूल्य: रु. 25/-
मूल्य: रु. 32/-
मूल्य: रु. 15/-
मूल्य: रु. 24/-
मूल्य: रु. 12/-
मूल्य: रु. 10/-
VAN/PM-32/88

नंदन

प्राचीन कथा विशेषांक
अप्रैल '८९ वर्ष: २५ अंक: ६

सम्पादक
जयप्रकाश भारती

कहां क्या है

कहानियां

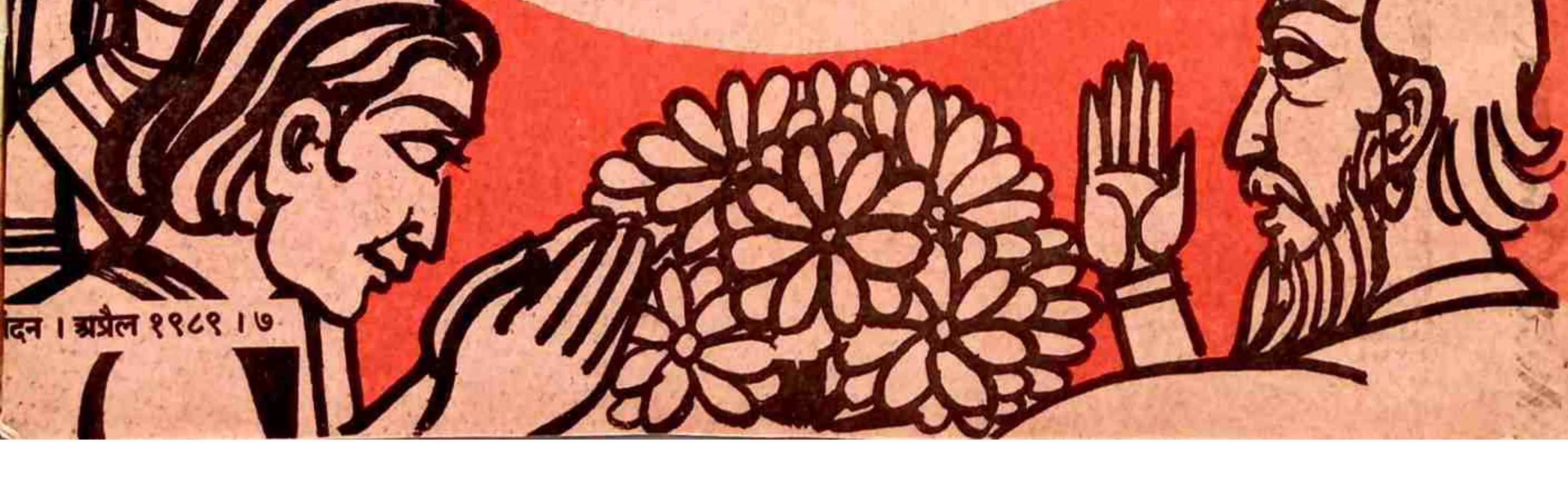
इस अंक में विशेष

कविताएं

स्तम्भ

आवरण : तनुश्री सेनगुप्ता
एलबम : एम.एस. अग्रवाल

सहायक सम्पादक : चन्द्रदत्त 'इन्दु'
उप-सम्पादक : देवेन्द्रकुमार, रत्नप्रकाश शील, क्षमा शर्मा, डा. चन्द्रप्रकाश; चित्रकार : प्रशांत सेन



आओ बात करें

मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश कटाने
जिस पथ जाएं वीर अनेक।

जिसने हिंदी पढ़ी है, उसने ये पंक्तियां पढ़ी होंगी। माखनलाल चतुर्वेदी की यह कविता सरल है, पर दिल को छूने वाली है। वह अनोखे कवि और पत्रकार थे।

उन्होंने अपनी कलम और वाणी से देशवासियों को झकझोरा और जगाया।

माखनलाल जी का जन्म बावई (होशंगाबाद) में हुआ था। वहीं उन्होंने शिक्षा पाई। खंडवा के मिडिल स्कूल में पढ़ाने लगे। बच्चों के बीच वह बालक बन जाते। उन दिनों स्वाधीनता की लड़ाई शुरू हो गई थी। उन्होंने अध्यापक का काम छोड़ दिया। अपने को पूरी तरह देश सेवा में लगाने का निश्चय किया।

'प्रभा' पत्रिका निकाली। देश-प्रेम की कविताएं लिखते। जोरदार भाषण देते। गांधी जी तथा दूसरे नेताओं से सम्पर्क किया। गांधी जी उनसे प्रभावित हुए। दो बार गांधी जी बावई गए, जबकि उन दिनों वहां पहुंचने के लिए पक्की सड़क तक न थी। उनका भाषण देने का ढंग बड़ा असरदार होता। गांधी जी ने कहा था —"हम सब तो सिर्फ बात करते हैं, बोलना तो माखनलाल जानते हैं।"

उन्होंने साप्ताहिक पत्र 'कर्मवीर' निकाला। अनेक कवि और लेखक तैयार किए। नई पीढ़ी में देश-प्रेम की चेतना भरते। उनकी कविताएं घर-घर में गूंजने लगीं।

उनकी कविता हवा, धूप और चांदनी की तरह हमें छूती है। मुसीबतों से जूझने और जीवन जीने का पाठ पढ़ाती हैं। उनकी कविता में कृष्ण मिलते हैं, बांसुरी की तान सुनाई देती है। जन-जन का सुर मिला है उस बांसुरी में।

कवि के लिए पूरा देश मां दुर्गा है। दुर्गा खेत-खलिहान, नदी-तालाब, वन-नगर—सबको अपना सिंहासन बनाती है। मुकुट को ठुकराकर, बगिया के फूलों का हार जूड़े में गूंथ लेती है। संस्कृति के गहने पहन लेती है। दुर्गा मां सारे देशवासियों को अपनी छाया में समेटे है। उथल-पुथल के बीच अडिग मां सभी में नए प्राण, नई शक्ति भरती है।

माखनलाल जी ने अनेक नामों से लिखा। बाद में 'एक भारतीय आत्मा' नाम ही चला।

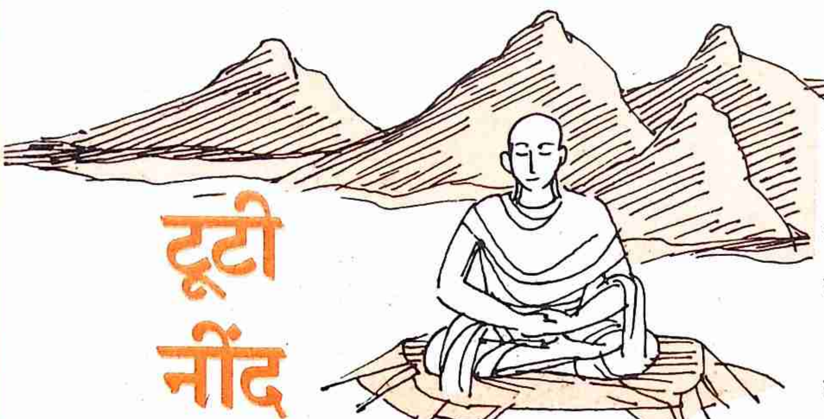
खंडवा के छोटे-से मकान में ही उनका जीवन बीता। किराए का था वह मकान, जिसमें पुस्तकें ही अधिक थीं। दादा माखनलाल ने बिल्कुल देहाती जैसी सादगी से वहां जीवन बिताया। दादा देश के लिए खुद जेल गए, पर उन्होंने उसे भुनाया नहीं।

आज वह होते तो सौ बरस के होते। आजादी के लिए जिसने बलिदान होना सिखाया —उस अनोखे कवि और निडर पत्रकार को नमन।

'प्राचीन कथा विशेषांक' हर वर्ष हम निकाल रहे हैं। बड़े-बड़े ग्रंथों और पोथियों से कहानियां चुनते हैं। माखन भरी यह हांडी तुम्हारे लिए भेंट है।

तुम्हारे भइया

जयप्रकाश भारती



टूटी नींद

—ज्योति किरण

प्राचीन काल में वाराणसी में कलाबु नाम का राजा राज्य करता था । वाराणसी में ही उन दिनों एक बहुत धनी ब्राह्मण रहता था । उसके पुत्र का नाम था—कुंडकुमार । कुंडकुमार सभी विद्याओं में निपुण था । अपने माता-पिता से उसे बहुत स्नेह था ।

अचानक उसके माता-पिता की मृत्यु हो गई । कुंडकुमार के दुःख की सीमा न रही । घर में खूब धन-धान्य था । मगर कुंडकुमार के मन को चैन कहां ? वह सोचने लगा—'क्या यह सारी सम्पत्ति मेरे माता-पिता ने इसीलिए एकत्र की थी कि वे सब कुछ यहीं छोड़कर चले जाएं । उनके साथ तो कुछ भी न गया ।'

रात-दिन इसी प्रकार सोचते-सोचते कुंडकुमार को सभी चीजों से विरक्ति हो गई । उसने अपने नौकरों से कहा—''इस घर में जिसको जो चीज पसंद आए, ले जा सकता है ।''

नौकरों में होड़ मच गई । जिसके हाथ जो लगा, उठाकर ले गया । उधर कुंडकुमार ने सारे कीमती वस्त्राभूषण त्याग दिए । साधारण कपड़े पहन, जंगल की तरफ चल दिया । चलते-चलते वह हिमालय पर जा पहुंचा । वहां एक गुफा में बैठकर कठोर तप करने

एक दिन उसने सोचा—'बहुत दिन हुए वाराणसी छोड़े, चलकर देखना चाहिए मेरे नगर का क्या हाल है ?' और वह चल दिया । बहुत दिनों की लम्बी यात्रा के बाद वह वाराणसी पहुंचा । कुंडकुमार के चेहरे से तेज टपक रहा था । उसी समय रास्ते से सेनापति जा रहा था । कुंडकुमार को देखते ही वह समझ गया, अवश्य ही यह कोई पहुंचे हुए साधु हैं । उसने कुंडकुमार से कहा—''ऋषिवर, आप कौन हैं ? कहां से पधारे हैं ?''

कुंडकुमार ने बताया कि वह बहुत दिनों बाद वाराणसी आया है । कठोर तपस्या और वाराणसी छोड़कर जाने की बात उसने सेनापति को नहीं बताई ।

''महाराज, आज मेरे यहां चलकर भोजन ग्रहण कीजिए । विश्राम की व्यवस्था भी वहीं हो जाएगी ।''—सेनापति बोला ।

''साधु होने के कारण मैं सिर्फ भिक्षा ही ग्रहण कर सकता हूं । विश्राम के लिए ईश्वर द्वारा दिए गए ये सघन पेड़ ही काफी हैं ।''— कहता हुआ कुंडकुमार आगे बढ़ गया । संयोग की बात, अगले दिन कुंडकुमार भिक्षा मांगते हुए सेनापति के द्वार पर आ पहुंचा ।

सेनापति ने उसका खूब आदर-सत्कार किया । कहा—''महाराज, कल आपने मेरा आग्रह टाल दिया था । आज मेरी प्रार्थना है कि आप चाहे मेरे घर पर न ठहरें, मैं आपकी व्यवस्था राजमहल के उद्यान में करा देता हूं ।''

सेनापति ने इतनीविनम्रता से अपनी बात कही थी कि कुंडकुमार टाल न सका । वह राजमहल के उद्यान में जाकर विश्राम करने लगा ।

राजा कलाबु अक्सर शाम के समय बाग में टहलने आया करता था । उस दिन जब राजा आया, तो उसके साथ कई नर्तकियां तथा गाने-बजाने वाले भी थे ।

राजा एक स्थान पर बैठ गया । मधुर संगीत गूंजने लगा । नर्तकियां नाचने लगीं । नृत्य देखते और संगीत का आनंद लेते हुए राजा को नींद आ गई ।

राजा को सोते देख, नर्तकियों ने नाचना बंद कर दिया । वे आपस में बातें करने लगीं—''महाराजा, तो सो गए ।''—एक ने कहा ।

''अब हम किसके लिए नाचें ?''—दूसरी बोली ।

''ऐसा करें, महाराजा को विश्राम करने दें । हम लोग तब तक घूम-फिरकर इस बाग की शोभा देखते हैं ।''—तीसरी ने कहा ।

तीसरी नर्तकी की यह बात सभी को पसंद आई। सब उद्यान में घूमने लगीं।

कुंडकुमार उस समय एक पेड़ के नीचे ध्यान मग्न बैठा था। नर्तकियां उसी दिशा में बढ़ चलीं। वे ध्यान मग्न कुंडकुमार के सामने हाथ जोड़कर बैठ गईं।

थोड़ी देर में कुंडकुमार का ध्यान टूटा, तो सामने बैठी नर्तकियों पर दृष्टि पड़ी।

कुंडकुमार ने उन्हें उपदेश देना प्रारम्भ किया। तभी राजा की नींद टूट गई। उसने देखा गाने-बजाने वाले चुप बैठे थे। नर्तकियों का कहीं अता-पता न था। राजा कलाबु उठकर नर्तकियों को इधर-उधर ढूंढ़ने लगा। थोड़ी दूर जाकर उसने देखा—नर्तकियां एक साधु के सामने बैठकर उपदेश सुन रही हैं।

यह देख, राजा के गुस्से का ठिकाना न रहा। बोला—"तुम लोग यहां बैठकर क्या कर रही हो? नाचना क्यों बंद कर दिया?"

राजा को क्रोध में भरा देखकर सारी नर्तकियों के होश उड़ गए। वे घबराए स्वर में बोलीं—"महाराज, आप गहरी निद्रा में लीन थे। हमने सोचा, यदि हम नाचती रहीं, तो आपकी नींद टूट जाएगी।"

"इससे क्या? मैं अगर सो गया था, तब भी तुम्हें नाचते रहना चाहिए था।"—राजा ने कहा।

कुंडकुमार ध्यान से राजा की बातें सुन रहा था। वह बोला—"राजन्, ऐसी कला का फायदा क्या, जिसके पारखी न हों।"

—"साधु महाराज, तुम चुप बैठे रहो। तुम्हें क्या पता कि कला क्या होती है? तुम तो बस अपनी तपस्या से मतलब रखो।"

राजा की कड़वी बात सुनकर भी कुंडकुमार मुसकराता रहा। यह देखकर राजा और भी अधिक नाराज हो गया। बोला—"बता सकते हो, दुनिया में सबसे बड़ी चीज क्या है?"

"मानवता।"—कुंडकुमार ने कहा।

—"और सबसे बड़ा धर्म?"

—"अहिंसा और क्षमा।"

"क्या तुम अपने बताए इस धर्म—अहिंसा और क्षमा पर खरे उतर सकते हो?"—राजा कलाबु ने व्यंग्य से कहा।

—"खरा क्या उतरना राजा, अहिंसा और क्षमा तो किसी भी तपस्वी के जीवन का अंग होती हैं।"

"अच्छा!"—कहते हुए कलाबु ने ताली बजाई।

तुरंत दो सैनिक उपस्थित हुए। राजा ने उनको एक कोड़ा लाने का आदेश दिया। सैनिक कोड़ा ले आए। राजा ने कोड़ा उठाया और निर्दयता पूर्वक कुंडकुमार की पीठ पर तड़ातड़ बरसाने लगा। राजा कोड़े मारते-मारते थक गया, लेकिन कुंडकुमार के मुख पर वही मुसकराहट बनी रही।

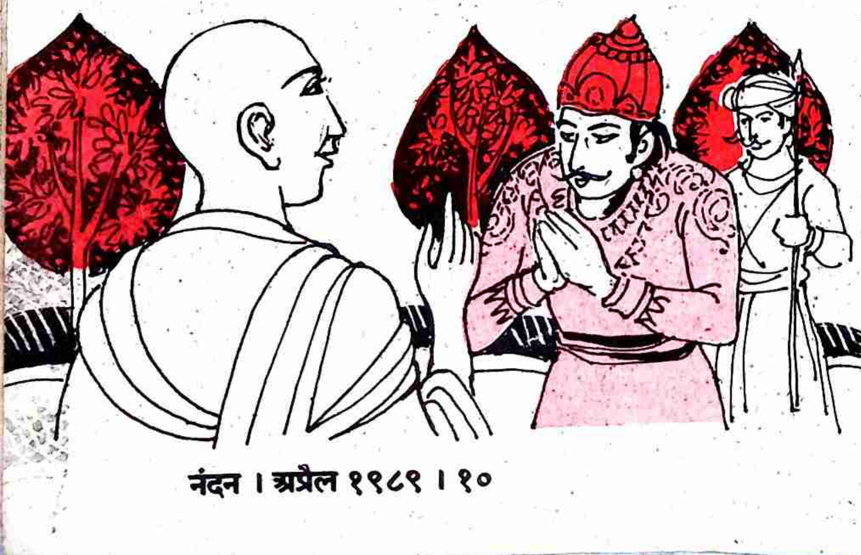
—"क्या अब भी तुम मुझे क्षमा कर सकते हो ऋषिवर जी? इतने कोड़े खाने के बाद।"

—"कैसे कोड़े राजन्, मुझे तो कुछ महसूस नहीं हुआ। मैं तो समाधि में था। पीठ को घायल करने पर भी तुम मेरी आत्मा को तो घायल नहीं कर सकते! और क्षमा आत्मा का ही गुण है।"

राजा को अपनी गलती पता चली। क्रोध में वह क्या अनर्थ कर बैठा! उसने कुंडकुमार से क्षमा मांग ली।

—"राजन्, जब मुझे तुम पर क्रोध ही नहीं आया, तो क्षमा कैसी?"

राजा उसी दिन से कुंडकुमार का शिष्य बन गया। थोड़े दिन बाद कुंडकुमार फिर से हिमालय की ओर चल दिया। राजा ने उसे रोकने की बहुत कोशिश की, मगर वह रुका नहीं। —(जातक कथा)





रामनवमी के अवसर पर

सीता राम मनोहर जोड़ी

राजा का मोह

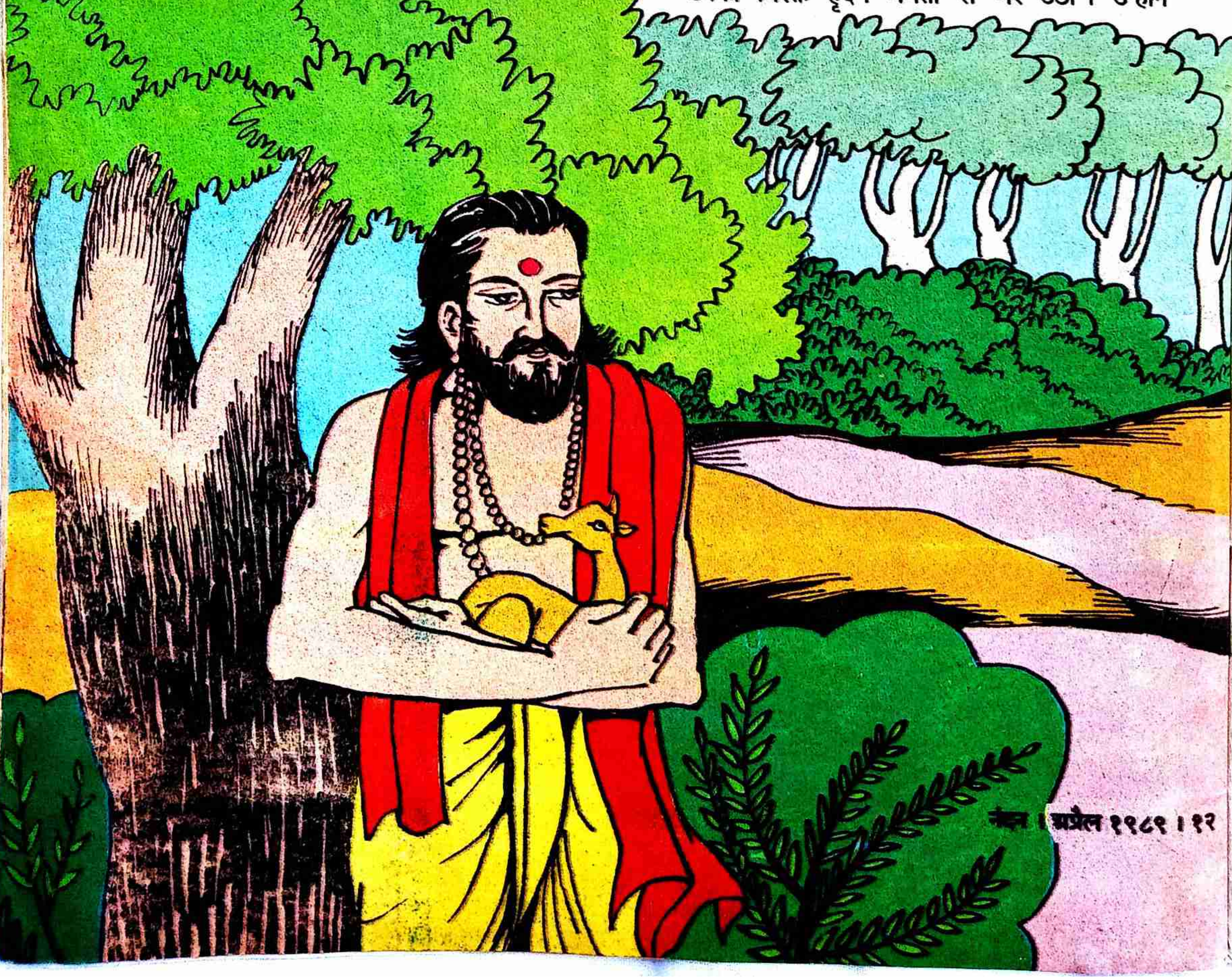
—स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती

राजा ऋषभदेव के पुत्र भरत अपने पिता की तरह महान ज्ञानी तथा तपस्वी थे। युवावस्था में ही उन्हें वैराग्य हो गया। राजवैभव, सुख-सम्पत्ति तथा सगे सम्बंधियों से उन्हें विरक्ति होती गई। एक दिन राज-पाट त्यागकर वह भी वन में तपस्या करने चले गए।

गंडकी नदी के पावन तट पर रहकर वह तपस्या करते थे। प्रातः चार बजे ब्रह्ममूहुर्त में उठते। गंडकी के जल में खड़े हो जाते। घंटों तक सूर्यनारायण का ध्यान तथा गायत्री मंत्र का जाप करते रहते। वह द्वारकाधीश भगवान कृष्ण की मानसी सेवा करते थे। सुबह से आधी रात तक उनका तप-ध्यान तथा शास्त्रों का अध्ययन चलता रहता था।

गरमी के दिन थे। भरत जी नदी में खड़े, मंत्र जाप कर रहे थे। तभी उन्हें सिंह की भयंकर गर्जना सुनाई दी। उन्होंने देखा—एक हरिणी सिंह की गर्जना सुनकर कांपती हुई उधर आई, वह जान बचाने के लिए नदी में कूद पड़ी।

हरिणी गर्भवती थी। शेर की दहाड़ से उसने नदी में प्रवेश करते समय ही बच्चे को ज़न्म दे दिया। बच्चे को जन्म देते ही हरिणी की मृत्यु हो गई। भरत जी ने उसके छोटे-से बच्चे को नदी के पानी में देखा, तो उनका विरक्त हृदय ममता से भर उठा। उन्होंने



सोचा— 'इसकी मां मर गई है । अब इस बेचारे अनाथ बच्चे का पालन कौन करेगा ? इसे कोई भी जानवर मार देगा ।' बच्चे को उठाकर वह अपनी कुटिया में ले आए । उसका पालन-पोषण करने लगे । उसे जल से नहलाते, गाय का दूध पिलाते । हरी-हरी दूब खिलाते । धीरे-धीरे भरत जी की उस बच्चे से ममता बढ़ती गई । तप-ध्यान में से समय निकालकर वह मृग शावक की सेवा में लगाने लगे । वह उनसे इतना हिल-मिल गया कि रात को उन्हीं के साथ सोने लगा । वह उनके पैरों को चाटता, तो भरत जी गद्‌गद्‌ हो उठते । उसके साथ ममता बढ़ी, तो उन्हें अपने पुत्रों की याद भी ताजा हो आई । सब कुछ त्यागकर भी वह पुनः ममता में फंस गए ।

भरत जी का अंतिम समय आया, तो उन्हें भगवान की जगह, हरिणी के बच्चे का ही ध्यान आने लगा । वह सोचने लगे— 'मेरी मृत्यु के बाद इस मृग शावक की देखभाल कौन करेगा, इसका क्या होगा ?' इस तरह मृत्यु के समय उनका मन उसी में उलझा रहा । इसी कारण उन्हें अगले जन्म में मृग का शरीर मिला ।

मृग शरीर में आने पर भी वह ज्ञानी तथा तपस्वी थे । उन्हें अपने पूर्व जन्म की पूरी याद थी । वह मृग रूप में गंडकी नदी आकर रहने लगे । रोज नदी में स्नान करते तथा अगला जीवन सुधारने के लिए पशु रूप में भी भगवान को याद करते। इस तरह काल चक्र के साथ एक दिन उन्हें मृग शरीर से मुक्ति मिल गई । इस बार उन्होंने एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया ।

इस जन्म में भी उनका नाम भरत ही था । उन्हें अपने पूर्व जन्मों की बात याद थी, इसीलिए भरत जी ने इस बार सावधानी बरतनी शुरू की । वह न किसी से बोलते थे, न किसी की ओर आंख उठाकर देखते थे । हर समय भगवान के चिंतन में लगे रहते थे ।

भरत जी के पिता का निधन हुआ, तो वह निश्चिंत होकर चौबीसों घंटे भगवान के ध्यान में लीन रहने लगे । अब वह घर छोड़कर हफ़्तों इधर-उधर भटकते रहते ।



द्वारका के शंकराचार्य

उस क्षेत्र का भील राजा निस्संतान था । उसने भद्रकाली की मनौती की हुई थी— 'यदि पुत्र का जन्म हुआ, तो मैं नरबलि चढ़ाऊंगा ।' पुत्र का जन्म हुआ, तो राजा ने अपने अनुचरों को आदेश दिया कि वे किसी स्वस्थ पुरुष को पकड़ लाएं, जिससे उसकी बलि दी जा सके ।

राजसेवक किसी पुरुष को ढूंढ़ने जंगल में निकल गए । उन्होंने नदी के किनारे एक स्वस्थ तथा सुंदर व्यक्ति को बैठे देखा । वे पास पहुंचे, तो समझे कि यह कोई पागल है । वे भरत जी को पकड़कर भील राजा के दरबार में ले आए ।

भरत जी की बलि देने की तैयारी शुरू कर दी गई । उन्हें स्नान कराया गया । नए कपड़े पहनाए गए । अंतिम बार सुस्वादु भोजन कराया गया । भरत जी को भील राजा की उपस्थिति में भद्रकाली के मंदिर में ले जाया गया । भीलराजा ने भद्रकाली की प्रार्थना की तथा वह नरबलि के लिए हाथ में तलवार लिए आगे बढ़ा, तभी मूर्ति से काली प्रकट हुईं और भील राजा की तलवार छीन ली । उसे दुत्कारते हुए बोलीं— "मूर्ख, तू यह क्या अनर्थ कर रहा है ? मेरे भक्त की हत्या करना चाहता है । मैं इस पाप कर्म से प्रसन्न नहीं होती । व्यक्ति की बलि चढ़ाना घोर पाप है । तुझे अपने बुरे कर्मों की बलि चढ़ानी चाहिए, ताकि तू भी भरत जैसा निर्मल हृदय बन जाए ।" कहकर देवी अंतर्धान हो गई । अब भील राजा की आंखें खुलीं । वह भरत जी के चरणों में गिर पड़ा ।

—पद्‌म पुराण





बाणों का पुल

—डॉ. रामलाल वर्मा

एक बार यदुवंशियों ने दिग्विजय का निश्चय किया । अपने घोड़े को अन्य राजाओं के राज्यों में भेजा । घोड़े के पीछे वीर यादव सेना के साथ श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को भेजा गया । घोड़ा बिना रुके अनेक राज्यों की सीमाओं में गया । यदुवंशियों की शक्ति को देखते हुए वहां के राजाओं ने घोड़े का सत्कार कर, उसे आगे जाने दिया ।

राजा अनुशाल्व के राज्य में घोड़ा रोका गया, पर भयंकर लड़ाई के बाद वहां से सम्मानित होकर वह घोड़ा आगे चला । यौवनाश्व और भीषण जैसे शक्तिशाली राजाओं को यादवों की शक्ति और प्रभाव के सामने झुकना पड़ा ।

अनुशाल्व सरीखे शक्तिशाली राजाओं की पराजय को देख, अन्य छोटे-मोटे राजाओं ने भयभीत होकर उस घोड़े को दूर से ही नमस्कार कर लिया । यादव वीरों की विजय पताका दूर-दूर तक फहराने लगी ।

इस प्रकार भारत के अनेक राजाओं के राज्यों की सीमाओं को पार करते हुए अश्वमेध का घोड़ा गंगा तट पर पहुंचा ।

वहां उस घोड़े को दैत्यराज बल्वल ने देख लिया । यदुवंशियों की शक्ति का प्रतीक समझ घोड़े को पकड़ लिया । घोड़े के पीछे आ रही यादव सेना को जब घोड़े के पकड़े जाने का समाचार मिला, तो वह क्रोध से भड़क उठी । किंतु वहां पहुंचने से पहले ही दैत्य घोड़े को लेकर चम्पत हो गया । सेना ने बल्वल का बड़ी तेजी से पीछा किया । मायावी दैत्य बल्वल वहां से घोड़ा समेत अंतर्धान हो गया ।

घोड़े और शत्रु को वहां न देखकर यादव दुखी हो गए । वे इधर-उधर फैल कर घोड़े और दैत्य बल्वल की खोज करने लगे ।

तभी महर्षि नारद वहां आए । महर्षि नारद ने उन्हें बताया कि दैत्य बल्वल घोड़े को समुद्र के बीच में बसे पांचजन्य द्वीप में ले गया है । बल्वल भगवान शिव का उपासक है । शिव ने उसे समर में सहायता का वरदान दे रखा है । वरदान के कारण उसे बहुत अभिमान हो गया है । उसके द्वीप तक पहुंचना बहुत ही कठिन है, इसीलिए वह अजेय समझा जाता है ।

महर्षि नारद से बल्वल के पांचजन्य द्वीप की जानकारी प्राप्त कर,यादवराज अनिरुद्ध सेना को लेकर सागर तट की ओर चल दिया ।

सेनापति अनिरुद्ध यादव-वीरों के साथ चलते हुए गंगासागर तक जा पहुंचा । वहां कपिल ऋषि के आश्रम में पहुंच कर उसने ऋषि को प्रणाम किया और अपना उद्देश्य बताया ।

ऋषि के आदेश पर यादव सेना ने वहां रात्रि विश्राम किया । दूसरे दिन पांचजन्य द्वीप तक जाने के लिए बाणों की वर्षा कर,एक पुल बनाने का निर्णय किया ।

यादव वीरों ने अपने निश्चय के अनुसार सागर पर बाण छोड़ने शुरू किए । आकाश में खड़े महर्षि नारद यादव सेना को देख रहे थे । उन्होंने बताया—"कोई भी बाण अभी तक पांचजन्य द्वीप तक नहीं पहुंचा है ।" यह सुनकर सेनापति अनिरुद्ध ने पूरी शक्ति लगाकर बाण चलाया,जो द्वीप तक जा पहुंचा । इससे उत्साह में भर कर अन्य यादव वीरों ने भी बाण छोड़े,

जो द्वीप तक पहुंचने लगे । हजारों वीरों के बाणों से थोड़े समय में ही सागर पर बाणों का एक पुल बन गया । पुल के निर्माण के बाद यादवराज अनिरुद्ध की अगुवाई में यादव सेना पांचजन्य द्वीप तक जा पहुंची ।

यादव सेना को अपने राज्य की सीमा पर देख, बल्वल दैत्य बहुत घबराया । फिर साहस बटोर कर उसने अपने सेनानायक मय नामक असुर को यादव सेना की थाह लेने के लिए भेजा । मयासुर वेश बदलकर यादव सेना में जा पहुंचा । उसने लौटकर बल्वल को बताया कि वह यदुवंशियों के साथ युद्ध न करे । उनका सम्मान कर, उन्हें घोड़ा वापस कर दे । यह सुनकर दैत्य बल्वल क्रोध में भर गया । उसने मयासुर को बुरा-भला कहा और यादव सेना से लड़ने का आदेश दिया ।

इस युद्ध में भयंकर और मारक शस्त्रास्त्रों का प्रयोग किया गया । दोनों ओर से असंख्य वीर मारे गए और न जाने कितने गम्भीर रूप से घायल हुए ।

अंत में दैत्य बल्वल ने स्वयं युद्ध क्षेत्र में आकर युद्ध किया । बल्वल ने मायावी युद्ध लड़कर यादव वीरों को चकित कर दिया । यादव वीर निराश हो गए । तब श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध ने युद्ध की अपनी श्रेष्ठ कला का प्रदर्शन करते हुए बल्वल को बाणों से घायल कर दिया । इससे दैत्यों की सेना में भगदड़ मच गई ।

अपने भक्त बल्वल की यह दशा भगवान शिव से देखी न गई । उन्होंने अपने सारे गणों को साथ लिया और युद्ध क्षेत्र में आ पहुंचे । शिव के आदेश से गणों ने युद्ध का पासा ही पलट दिया । उनके हाथों यादव सेना के अनेक नामी योद्धा मारे गए । विपत्ति में फंसे यादवों ने आखिर भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण किया । यादवों की यह दुर्दशा देख, श्रीकृष्ण भी युद्ध भूमि में आ पहुंचे । युद्ध भूमि में श्रीकृष्ण को उपस्थित देख कर भगवान शिव ने उनके आने का कारण पूछा ।

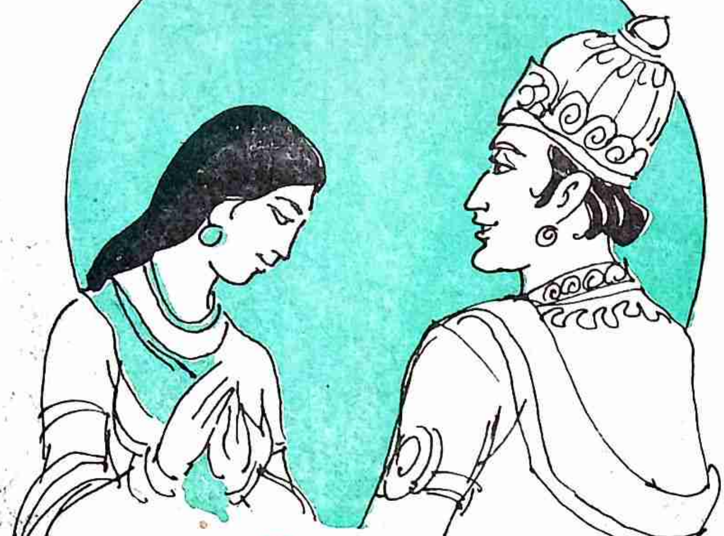
श्रीकृष्ण ने कहा—"भगवन ! यदि आप और हम ही इस तरह लड़ने लगेंगे, तो फिर सृष्टि का क्या होगा ? भक्त की रक्षा करना और बात है, पर निर्दोष यादवों ने आपका क्या बिगाड़ा है ?"

श्रीकृष्ण की बात सुन, शिव सोच में पड़ गए । सचमुच यादवों का कोई दोष नहीं था । बल्वल ने अकारण ही घोड़ा चुराया था, इसीलिए युद्ध छिड़ गया था । श्रीकृष्ण ने फिर कहा—"यादवों का घोड़ा पांचजन्य द्वीप पर कभी न जाता । अगर दैत्य घोड़े को पांचजन्य द्वीप पर पकड़ता, तो और बात होती । उसने यादवों से छल किया था । उसे तो दंड मिलना चाहिए ।"

शिव ने समझ लिया कि यादव निर्दोष हैं । उन्होंने बल्वल को समझाया, तो उसने यादवों का घोड़ा लौटा दिया । युद्ध तो समाप्त हो गया, पर युद्ध भूमि में अनेक राक्षस और यादव मरे पड़े थे । शिव ने अपनी अमृत दृष्टि उन पर डाली, तो वे सब जीवित हो गए । शिव अपने गणों के साथ अंतर्धान हो गए । यादव श्रीकृष्ण के साथ बाणों के उसी पुल से होते हुए लौट आए । ●

— गर्ग संहिता





अत्रि की बेटी

— स्वामी कल्याणदेव

महर्षि अत्रि महान तपस्वी थे । आश्रम का मनोहर वातावरण उनकी तपस्या की सुकीर्ति की शोभा बना था । प्रातःकाल वेद मंत्रों के उच्चारण से सारा वन प्रदेश ध्वनित हो उठता था । यज्ञ सामग्री की सुगंध से ही पता चल जाता था — यहां आसपास अत्रि महर्षि का आश्रम है ।

कुछ समय से महर्षि के चेहरे की दिव्यता कुछ धूमिल पड़ गई थी । चिंता की रेखा ने उनके मुख मंडल पर जैसे ग्रहण लगा दिया था । कारण था, उनकी पुत्री अपाला । महर्षि की प्यारी बेटी उदास थी, तो वह कैसे प्रसन्न रहते ! सब उपाय किए, मगर व्यर्थ । न मंत्र शक्ति काम आ रही थी, न ही कोई औषधि ।

हुआ यह कि अपाला के विवाह के बाद उसे चर्म रोग ने आ घेरा । धीरे-धीरे यह कुष्ठ रोग में बदल गया । अपाला बहुत सुंदर थी, किंतु कुष्ठ रोग से उसकी त्वचा पर जगह-जगह सफेद दाग बन गए थे । इसी कारण पति ने अपाला को त्याग दिया था । अब वह अपने पिता अत्रि के पास ही रहती थी ।

विवाहिता बेटी सदा के लिए माता-पिता के पास रहने आ जाए, इससे और बड़ी वेदना क्या हो सकती है माता-पिता को ! दिन बीत रहे थे, मगर महर्षि को एक-एक दिन भारी पड़ रहा था । सोचते थे — 'मेरी बेटी का सुख दिन-प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है ।'

महर्षि अपनी तपस्या के बल पर जान गए थे — इस रोग का निवारण इंद्र ही कर सकते हैं । उनके रथ के पहिए, जिस धातु से बने हैं, उसके स्पर्श से अपाला का रोग दूर हो सकता है । परंतु अत्रि की प्रार्थना बेकार जा रही थी — इंद्र प्रसन्न नहीं हुए ।

आखिर अपाला ने मन में कुछ निश्चय किया । पूर्णमासी की अर्ध रात्रि को वह आश्रम छोड़कर निकल पड़ी । उसे खोजनी थी सोमलता । लता चांदनी में चमकती थी । चंद्रमा को औषधिनाथ इसीलिए कहा जाता है । तमाम जड़ी-बूटियों की पहचान चांदनी में ज्यादा अच्छी होती है ।

अपाला ने सरोवर में स्नान किया । फिर इंद्र देवता का ध्यान कर, मन ही मन कहा — 'आज मैं आपको सोमरस पिलाऊंगी देव । आप मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दें ।'

और तभी झाड़ियों में सोमलता उसे दिखाई दे गई । उसने परीक्षा करने के लिए उसे दांतों से दबाया । लता से सोम की बूंद धरती पर गिरी । उसकी गंध ने अपाला को आनंद मग्न कर दिया । उसने सोमलता तोड़ ली । साथ में लाए पात्र में उसे निचोड़ा ।

तभी एक दिव्य पुरुष वहां प्रकट हुआ । बोला — "मैं इंद्र हूं । चंद्रमा की पूर्ण चांदनी में सोमपान के लिए घूमता रहता हूं । तुमने मुझे याद किया, इसी से चला आया ।"

अपाला धन्य हो गई । उसने इंद्र को प्रणाम किया । सोमरस भरा पात्र दे दिया । सोमरस पीकर इंद्र बोले — "सच्ची साधना कभी निष्फल नहीं होती ।" उन्होंने अपाला को पकड़कर रथ के पहिए के छेदों से तीन बार बाहर निकाला । तुरंत उसका चर्मरोग दूर हो गया । अपाला का सौंदर्य और अधिक चमकने लगा । इंद्र जा चुके थे ।

अत्रि महर्षि को पता चला, तो उन्होंने अपनी बेटी को आशीर्वाद दिया । फिर उसे पति के पास भेज दिया । अपाला का जीवन फिर सुख से भर उठा । ●

— बृहद्‌देवता

मंदिर बन गया

—मधुमालती जैन

राजा चक्रवर्मा की मृत्यु के बाद उनका बेटा यशस्कर देव सिंहासन पर बैठा। उसे अपने पिता के समान न तो चाटुकारिता पसंद थी, न ही अत्याचार। चाहता था— राज्य का शासन न्यायपूर्ण हो और राज्य में कोई व्यक्ति ऐसा न हो, जिससे लोग अपने को अपमानित महसूस करें। उसने राजसिंहासन पर बैठते ही कश्मीर के सम्माननीय व्यक्तियों को बुलाया। कहा— "आपका मुझ पर विशेष अनुग्रह है। इसीलिए आपने मुझ पर शासन का भार सौंपा है। मैं आशा करता हूं कि आप लोग मेरी हर ऐसी बात मुझे बताएंगे, जो आपको बुरी लगे।" यह सुनकर सभी बहुत प्रसन्न हुए।

एक दिन द्वारपाल ने राजा को आकर सूचना दी कि एक व्यापारी महल के द्वार पर अनशन किए बैठा है। सुनकर राजा ने उसे अंदर लाने का हुक्म दिया। पूछे जाने पर वह व्यापारी बोला— "महाराज, मैं पहले इस नगर का धनाढ्य व्यापारी था। उधार लेने वालों ने जब मेरा पैसा वापस देने से मना कर दिया, तो मेरे पास कुछ नहीं बचा। मैं दरिद्र हो गया। साहूकार तकाजा करने लगे, तो मैंने अपनी सारी सम्पत्ति के साथ-साथ अपने रहने का मकान भी बेच दिया। उसी मकान की सीढ़ियों के साथ छोटा-सा एक कमरा और थोड़ी-सी जमीन थी। वहां खेती-बाड़ी करके मेरी पत्नी अपना जीवन निर्वाह कर सकती थी। इसलिए मैंने वह हिस्सा नहीं बेचा। उसे पत्नी को दे मैं धन कमाने के लिए विदेश चला गया। बीस साल बाद थोड़ा-बहुत धन लेकर इस नगर में वापस आया, तो मेरी पत्नी वहां न थी। मैंने उसका पता लगाया, तो वह फटे-चीथड़ों में दूसरों के घर बर्तन मांजती, मजदूरी करती और जीवन-निर्वाह करती मिली। मेरे पूछने पर रोते-रोते उसने सारी बात बताई कि मैंने जीवन निर्वाह के लिए जो जमीन उसे दी थी, वह साहूकार ने छीन ली। उसे पीटकर घर से निकाल दिया।

पत्नी की बात सुनकर मुझे गुस्सा आ गया। मैं न्यायालय में न्याय मांगने गया। वहां भी उस साहूकार ने न्यायाधीश को अपनी ओर मिलाकर मुझे झूठा साबित कर दिया। जब मुझे कोई रास्ता नजर नहीं आया, तो आपकी न्याय प्रियता के चर्चे सुनकर ही मैं यहां आया हूं। या तो आप



न्याय करें, नहीं तो मैं यहीं अनशन करके अपनी जान दे दूंगा।"

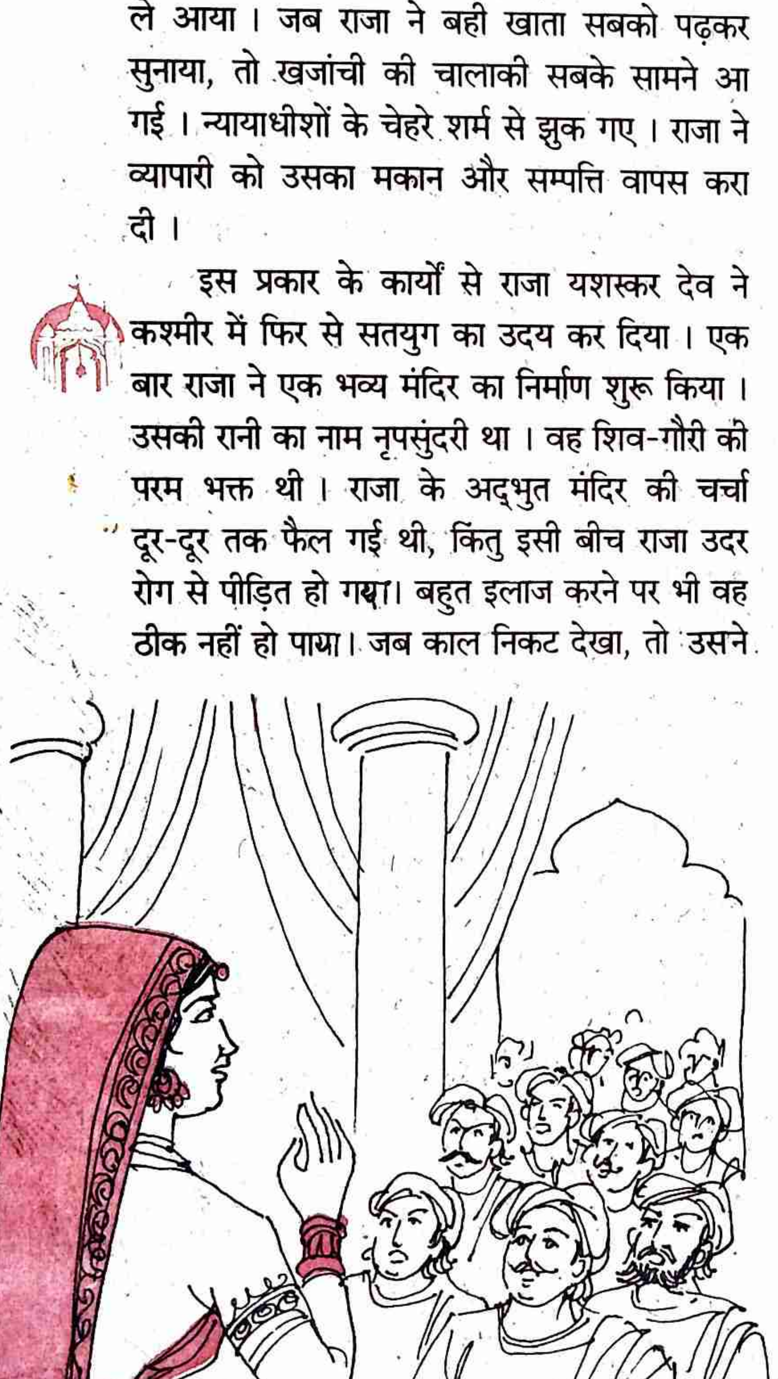
राजा यशस्कर ने उसकी सारी बात बड़े ध्यान से सुनी। फिर सब न्यायाधीशों को बुलवाया। व्यापारी के बारे में पूछताछ की। सब न्यायाधीश एक हो गए। बोले— "महाराज! हम सबने भली-भांति सोच-समझकर ही न्याय किया है। यह झूठा है। इसे दंड मिलना ही चाहिए।"

राज्यसभा के सदस्यों ने भी न्यायाधीशों का पक्ष लिया। परंतु राजा यशस्कर को कहीं कुछ गड़बड़ लग रही थी। आखिर उसने एक रास्ता खोजा। इधर-उधर की बातें शुरू कर दीं। फिर सबकी अंगूठियों में जड़े रत्नों को देखने के बहाने हंसते-हंसते सबकी अंगूठियां ले लीं। उन अंगूठियों में साहूकार की अंगूठी भी थी। अचानक वह बोला— "आप लोग बैठें, जलपान करें। मैं अभी आता हूं।"

बाहर जाकर राजा ने अपने विश्वासी सेवक को साहूकार की अंगूठी देते हुए कहा— ''साहूकार के खजांची को यह अंगूठी दिखाकर कहना कि जिस वर्ष उस मकान का विक्रय पत्र लिखा गया था, उस वर्ष का बही खाता दे दो। मकान-विक्रय के मामले में उसकी आवश्यकता पड़ गई है।''

इस तरह राजा का सेवक साहूकार का बही खाता ले आया। जब राजा ने बही खाता सबको पढ़कर सुनाया, तो खजांची की चालाकी सबके सामने आ गई। न्यायाधीशों के चेहरे शर्म से झुक गए। राजा ने व्यापारी को उसका मकान और सम्पत्ति वापस करा दी।

इस प्रकार के कार्यों से राजा यशस्कर देव ने कश्मीर में फिर से सतयुग का उदय कर दिया। एक बार राजा ने एक भव्य मंदिर का निर्माण शुरू किया। उसकी रानी का नाम नृपसुंदरी था। वह शिव-गौरी की परम भक्त थी। राजा के अद्‌भुत मंदिर की चर्चा दूर-दूर तक फैल गई थी, किंतु इसी बीच राजा उदर रोग से पीड़ित हो गया। बहुत इलाज करने पर भी वह ठीक नहीं हो पाया। जब काल निकट देखा, तो उसने अपने मंत्री से कहा— ''जैसे भी हो, यह मंदिर अवश्य पूरा होना चाहिए, वर्ना मेरी आत्मा भटकती रहेगी।''



कुछ ही दिन बाद राजा की मृत्यु हो गई। राजा के गुरू को मंत्री ने किसी प्रकार अपनी ओर मिला लिया और मंदिर बनवाने के बहाने राजकोष का धन अपने घर में भरने लगा। मंदिर का काम रुक गया। एक दिन यह बात रानी को पता चल गई। दुष्ट मंत्री पहले से ही रानी को अपने वश में करने का प्रयत्न कर रहा था, किंतु रानी उसकी बातों में नहीं आती थी। वह जानती थी कि उसका पुत्र अभी छोटा है और यह धूर्त मंत्री प्रजा से तरह-तरह की बातें कर उसे बहका रहा है। मंदिर को यह यूं कभी पूरा नहीं बनने देगा।

मंदिर को पूरा करना बहुत जरूरी था। यह उसके स्वामी की अंतिम इच्छा थी। एक दिन रानी ने कुछ सोचकर मंत्री से कहा— ''आप जानते हैं, मंदिर पूरा होने से पहले ही मेरे स्वामी स्वर्ग लोक सिधार गए हैं, इसलिए इस मंदिर को बनवाना जरूरी है। मंदिर के पूरा होते ही आप जो कहेंगे, मैं करने को तैयार हूं।''

यह सुनकर धूर्त मंत्री बहुत प्रसन्न हुआ। उसने थोड़े ही दिनों में मंदिर बनवा दिया। मंदिर बनने के बाद राज्य की ओर से एक यज्ञ करवाया गया। उसमें राज्य के सभी विद्वानों और पंडितों को बुलवाया गया। राजा के प्रशंसक भी उपस्थित थे। यज्ञ की पूर्णाहुति पर रानी ने उन विद्वानों के सामने धूर्त मंत्री की सारी बातें बता दीं। वहां बैठे सभी लोगों से प्रार्थना की— ''आप सब लोग मेरी और मेरे बेटे की रक्षा करें।'' यह सुनना था कि सब लोग एक स्वर में मंत्री की निंदा करने लगे। राजा के विश्वासपात्र सेवक तलवार लेकर मंत्री को मारने दौड़े, किंतु वह किसी तरह वहां से भागने में सफल हो गया। इसके बाद उस मंत्री का पता नहीं चला। रानी ने अपने किशोर पुत्र को सिंहासन पर बैठाया और खुद राज्य का कार्य चलाने लगी। इस तरह रानी अपने पति के सपनों को साकार करती हुई प्रजा की भलाई में लग गई। ●

—राजतरंगिणी

सूना तीरथ

सोमाहुति

एक बार अर्जुन तीर्थयात्रा पर निकले। वह अकेले थे। घूमते-फिरते पंचकुंड तीर्थ के पास पहुंचे। अर्जुन ने देखा, सब तरफ सन्नाटा है। दूर-दूर तक कोई दिखाई नहीं दे रहा था।

यह देख, अर्जुन को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने पंचकुंड तीर्थ की महिमा सुनी थी। वह सोचने लगे—'ऐसा क्यों हुआ ? आखिर सब लोग इस तीर्थ को त्यागकर क्यों चले गए ?'

वह एक पेड़ के नीचे बैठे यही सोच रहे थे। तभी एक तपस्वी वहां आए। अर्जुन ने उठकर उनके चरण छुए। फिर अपने मन की बात कह दी।

तपस्वी ने कहा—"अर्जुन, क्या तुम्हें पता नहीं, यहां क्या हो गया है ?"

"क्या हो गया है ?"—अर्जुन ने उत्सुक स्वर में पूछा।

"यह पंचकुंड तीर्थ अब मृत्यु स्थल बन गया है।" —कहते हुए तपस्वी ने थोड़ी दूर पर बने एक कुंड की ओर संकेत किया। अर्जुन ने कुंडों की दिशा में देखा, पर वह कुछ समझ न पाए। तेज हवा में पत्ते शोर कर रहे थे। धूल उड़ रही थी। उन्होंने उदास स्वर में कहा—"अपनी बात स्पष्ट कीजिए।"

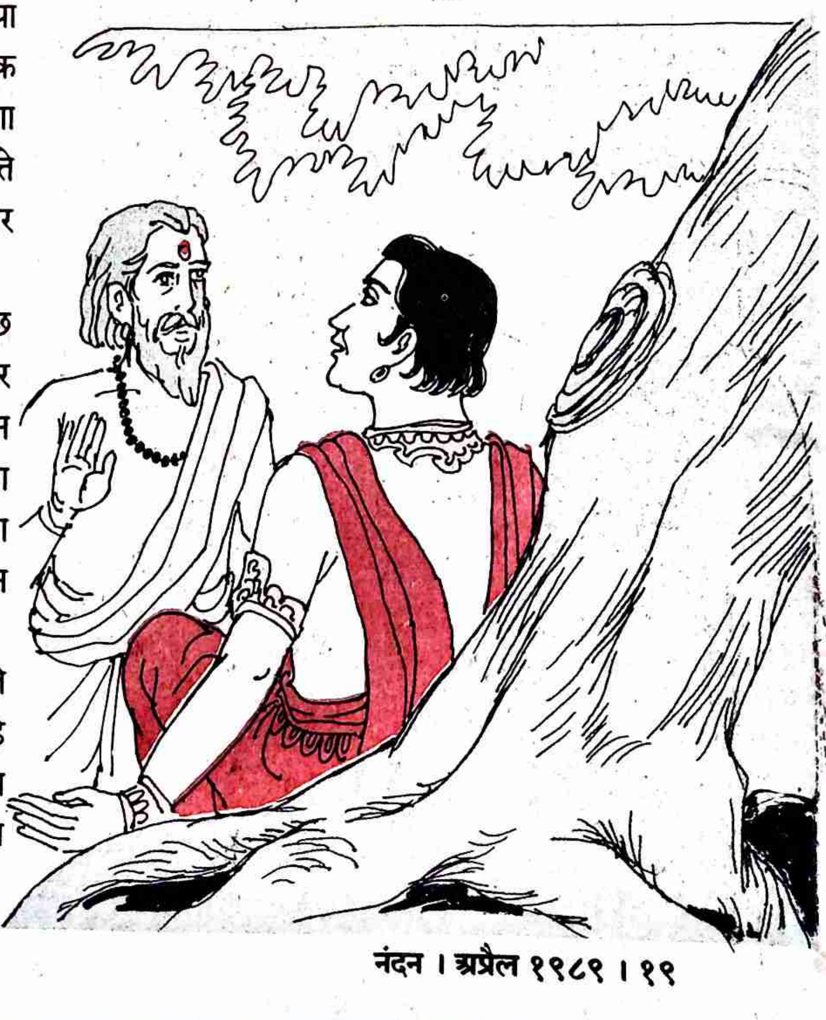
तब तपस्वी ने कहा—"तो सुनो, पिछले कुछ समय से न जाने कैसे,यहां के हर कुंड में एक भयंकर मगरमच्छ प्रकट हो गया है। जो भी तीर्थ यात्री स्नान के लिए कुंड में उतरता है, वही काल के गाल में चला जाता है। इसी कारण भक्तों ने पंचकुंड तीर्थ का त्याग कर दिया है। तुम इन कुंडों की तरफ भूलकर भी न जाना।"

अर्जुन को चेतावनी देकर तपस्वी अपने रास्ते चले गए। अर्जुन उस एकांत स्थान में कुछ देर मौन खड़े रहे। फिर धीरे-धीरे बढ़कर प्रथम कुंड के पास जा खड़े हुए। कुंड का निर्मल जल हवा से धीरे-धीरे हिल रहा था। अर्जुन देखते रहे।

एकाएक जल में लहरें उठने लगीं। फिर एक विशालकाय मगरमच्छ ने अपना भयानक सिर पानी से ऊपर निकाला। उसकी आंखें अर्जुन को देख रही थीं। जैसे वह कह रहा था—'अर्जुन, कुंड में उतरे, तो मेरा भोजन बन जाओगे।'

अर्जुन सोचने लगे—'क्या मगरमच्छों के कारण पवित्र पंचकुंड तीर्थ अप्रतिष्ठित हो जाएगा ! नहीं, मेरे रहते कभी नहीं। मैं देखता हूं इस मगरमच्छ को।' अर्जुन ने अपना उत्तरीय कुंड के निकट रख दिया और कुंड में कूद पड़े। 'छपाक' की आवाज हुई। अर्जुन को लगा, जैसे उनका एक पैर भयानक बंधन में जकड़ गया हो। मगरमच्छ ने उनका पैर अपने मुंह में दबा लिया था और उन्हें तली की ओर खींचे ले जा रहा था।

पर अर्जुन क्या एक मगरमच्छ से हार जाते ? उन्होंने दोनों हाथ हवा में लहराए और तेजी से ऊपर उछाले। उनके पैर को अपने मुंह में दबाए मगरमच्छ भी हवा में उठ गया। वह पूंछ फटकार रहा था।





अगले ही पल अर्जुन मगरमच्छ को लिए कुंड के पास, सूखी जमीन पर आ गिरे ।

जैसे ही मगरमच्छ ने धरती स्पर्श किया, उसका रूप बदलने लगा । कुछ ही पल में वहां एक युवती खड़ी दिखाई देने लगी । उसने हाथ जोड़कर अर्जुन को नमस्कार किया । बोली—''हे वीर श्रेष्ठ, यदि आप न आते, तो मेरा शाप कभी दूर न होता ।''

''कैसा शाप, किसने दिया ! तुम कौन हो ?'' —अर्जुन ने चकित स्वर से पूछा ।

तब उस युवती ने कहा—''हे वीर, मैं इंद्रलोक में निवास करने वाली अप्सरा हूं । मेरा नाम वर्चा है । एक दिन मैं अपनी सखियों के साथ धरती पर उतरी । मौसम सुहावना था । हवा में फूलों की मादक सुगंध तैर रही थी । हम वन में घूमने लगीं । तभी हमने एक व्यक्ति को एक पेड़ के नीचे ध्यान मग्न देखा ।''

''फिर क्या हुआ ?''—अर्जुन पूरी घटना जानने को उत्सुक हो उठे ।

''हमें शरारत सूझी । हमने सोचा कि इनका तप भंग किया जाए, तो मजा आएगा । बस, हम सखियां मिलकर नाचने-गाने लगीं । पर वह शांत भाव से तपस्या में बैठे रहे ।

''इस पर हम और भी जोर-जोर से गाने लगीं । कुछ देर बाद उस व्यक्ति ने आंखें खोलीं और कहा— 'अप्सराओ, तुम अभिमान में चूर हो रही हो । शायद तुम्हें भ्रम है कि कुछ भी क्यों न करो, इंद्र तुम्हें बचा लेंगे । आज तुम्हारा यह भ्रम टूटकर रहेगा । तुम पांचों अप्सराएं पंचकुंड तीर्थ के कुंडों में मगरमच्छ बनकर रहोगी । अपनी गलती पर पछताने का खूब समय मिलेगा तुम्हें ।''

अर्जुन ध्यान से अप्सरा की दुःख कथा सुन रहे थे । उसने आगे कहा—''अब तो हम सब घबरा उठीं । हाथ जोड़कर क्षमा मांगने लगीं । पर उन तपस्वी का मन नहीं पसीजा । जब हमें क्षमा मांगते हुए काफी समय बीत गया, तो उन्होंने कहा—'कुछ वर्षों तक तो तुम पांचों को पंचकुंड तीर्थ में मगरमच्छ बनकर रहना ही होगा । इसके बाद एक दिन कोई वीर कुंड में उतरेगा और तुम्हें लेकर बाहर आएगा । तभी शाप समाप्त होगा ।' इतना कहकर फिर ध्यानमग्न हो गए । और फिर मैंने स्वयं को मगरमच्छ के रूप में इस कुंड के जल में तैरते हुए पाया ।''—इतना कहकर अप्सरा चुप हो गई । उसकी आंखों से आंसू बहने लगे ।

अर्जुन ने उसे सांत्वना दी । कहा—''अपनी भूल से सबक लेना चाहिए, जिससे भविष्य में वैसा न हो । और हां, तुम्हारी बाकी सखियां कहां हैं ?''

वर्चा ने कहा—''वीरवर, मैं कुछ नहीं जानती, क्योंकि इतने वर्षों से मैं इसी कुंड में कैद रहने के लिए अभिशप्त थी । पर लगता है, मेरी तरह मेरी सखियां भी जल की कैद भोग रही होंगी । अब आप कृपा करके उन्हें भी शापमुक्त करें ।''

अर्जुन दूसरे कुंड के पास जा खड़े हुए । कुछ देर बाद जल में तैरता एक भयानक मगरमच्छ दिखाई दिया । अर्जुन ने झुककर पानी में हाथ डाल दिया । मगरमच्छ तुरंत लपका । अर्जुन पानी में कूद पड़े । उन्होंने मगरमच्छ की पूंछ पकड़कर झटका दिया, तो वह धरती पर आ गिरा और अप्सरा में बदल

गया।

इस तरह वीर अर्जुन ने पांचों अप्सराओं को उस भयानक शाप से मुक्त करा दिया।

उन्हें धन्यवाद देकर अप्सराएं आकाश मार्ग से देवलोक की तरफ लौट चलीं। वर्चा ने कहा—"वीर अर्जुन, कोई सेवा बताइए?"

सुनकर अर्जुन हंसकर बोले—"बस, अब कभी किसी की तपस्या भंग करने का प्रयास न करना।"

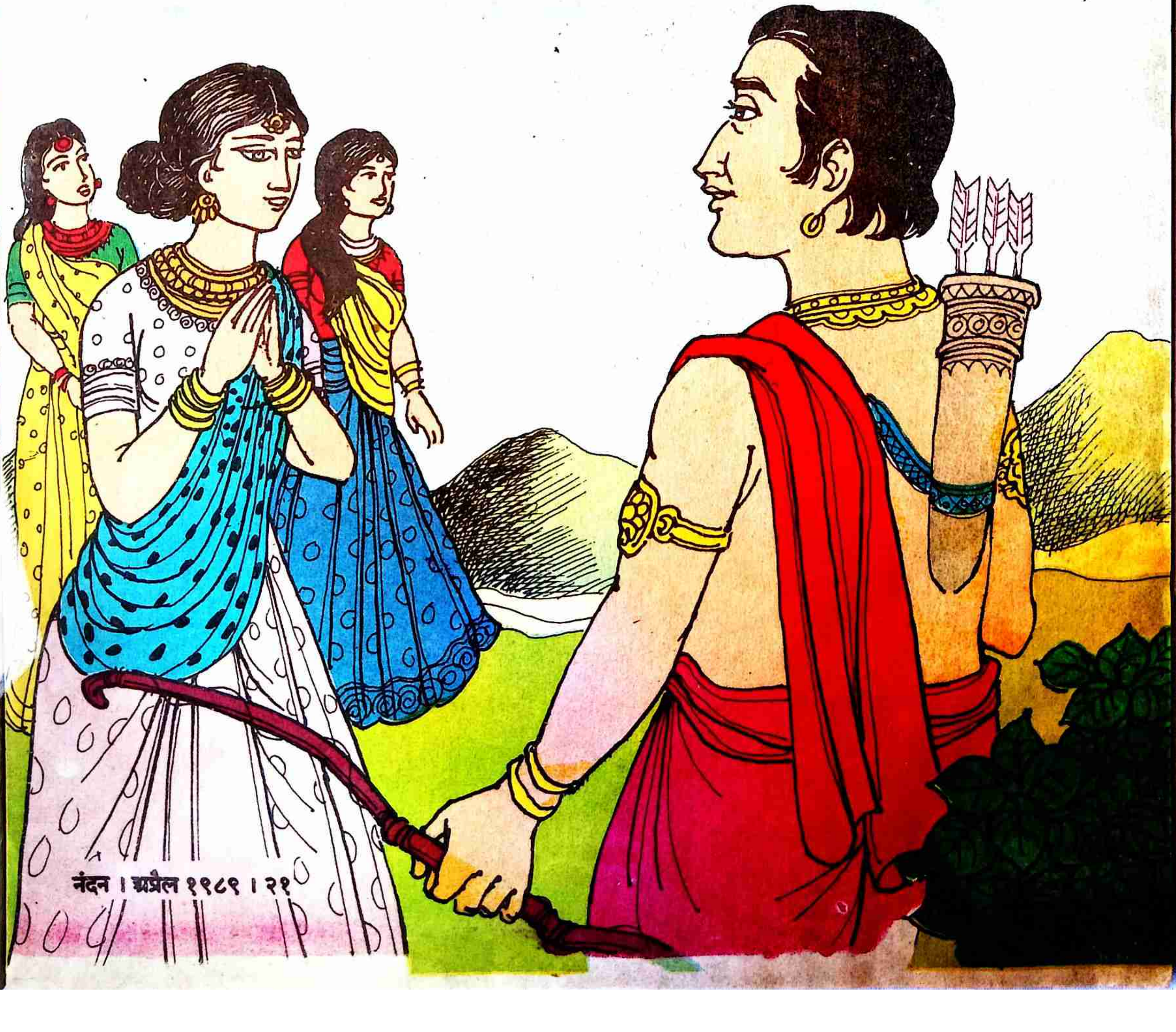
लजाती-सकुचाती पांचों अप्सराएं आकाश में अदृश्य हो गईं। अर्जुन ने बारी-बारी से पंचकुंड में स्नान किया। फिर मंदिर में जाकर देवदर्शन किए, धूप-दीप जलाए। वहां रखा शंख उठाकर होंठों से लगाया, तो देखा, वही तपस्वी द्वार पर खड़े हैं, जिन्होंने यहां आने से मना किया था। वह हंस रहे थे।

अर्जुन ने कहा—"आपने मुझे तो यहां आने से मना किया था और स्वयं चले आए। यह क्यों?"

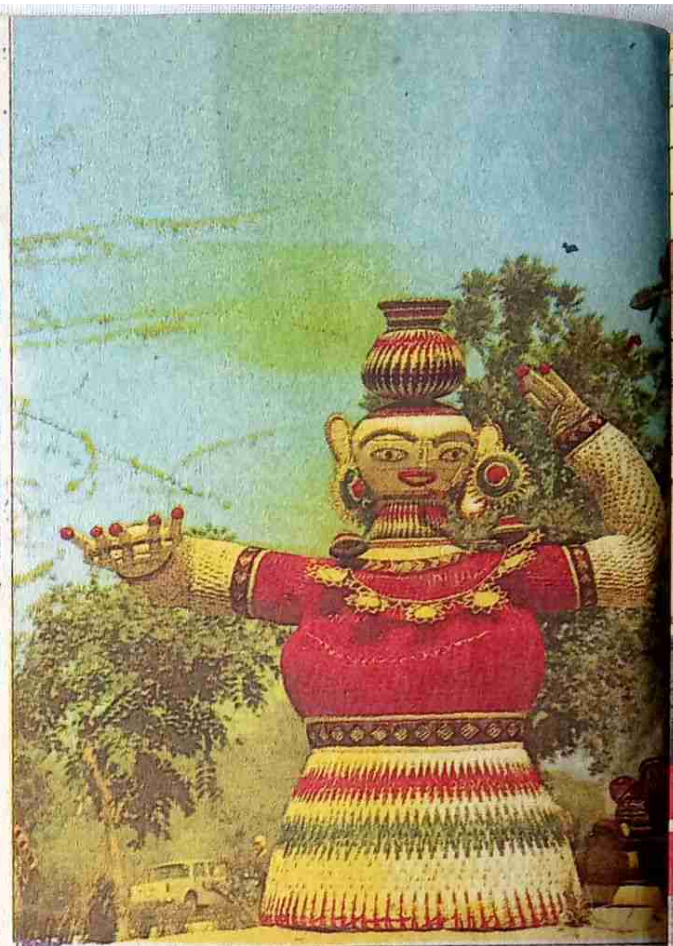
—"मैं जानता था, मना करने पर तुम यहां अवश्य आओगे। इसीलिए मना किया था। मुझे पांचों अप्सराओं के शाप की बात पता थी। मैं चाहता था, वे किसी तरह मुक्त हो जाएं। और वह काम तुम्हीं से सम्भव था।"

इसके बाद आशीर्वाद देकर तपस्वी चले गए। पंचकुंड तीर्थ की पवित्रता लौट आई थी। कुछ दिन बाद अर्जुन फिर से वहां आए तो खूब श्रद्धालु जुटे थे। पंचकुंड पर स्नान करने वालों की भीड़ लगी थी। ●

स्कंद पुराण

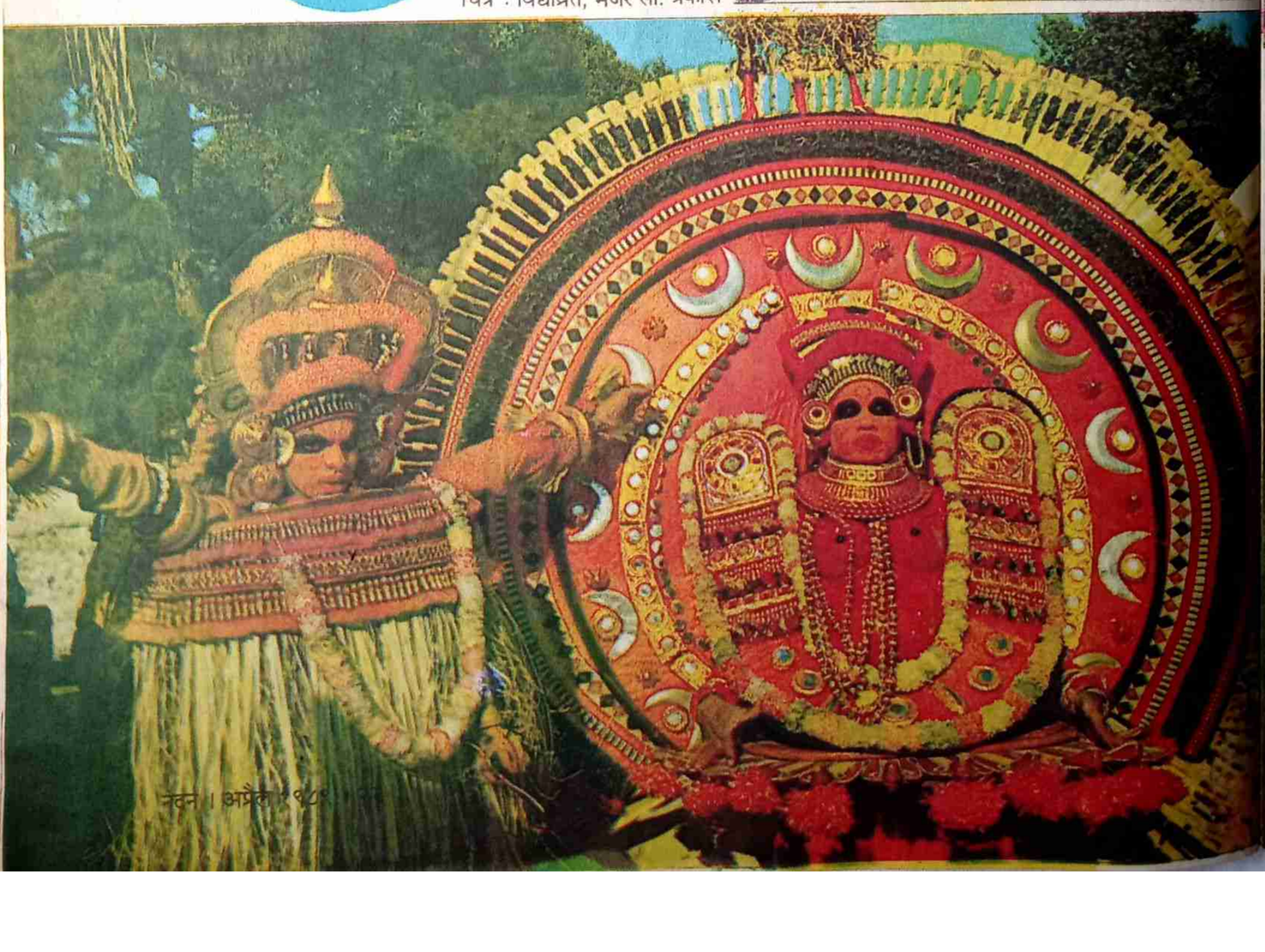




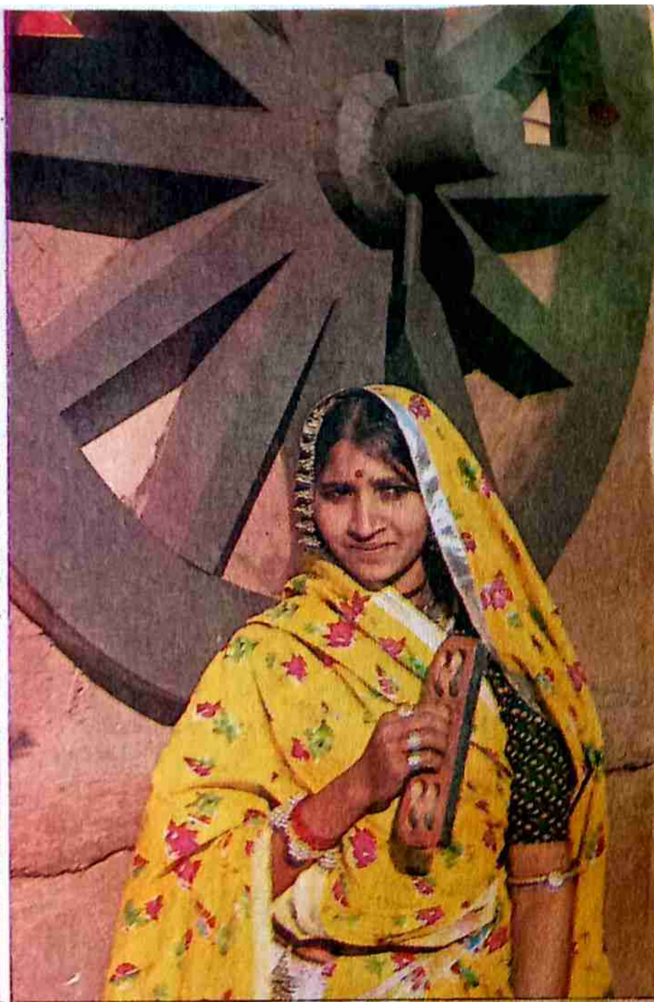


मेरा भारत महान

चित्र : विद्याव्रत, मेजर सी. प्रकाश





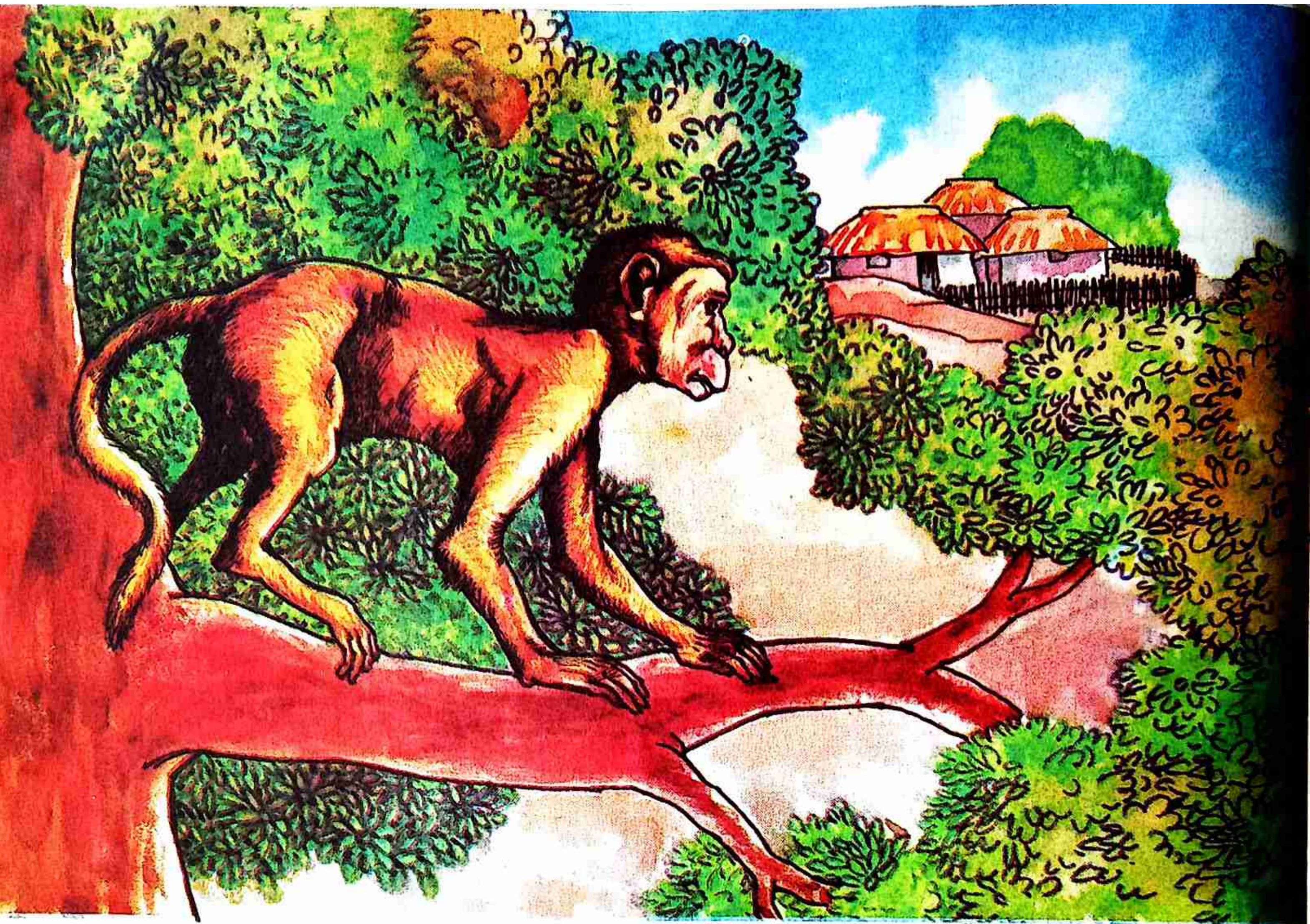








भारत—कश्मीर से कन्याकुमारी और मणिपुर से गुजरात तक फैला रंग-बिरंगा देश। तरह-तरह के वेश और लोग। हाथियों पर निकलने वाले बहादुर बच्चों का देश। शांति और भाईचारे के अंकुर रोपते जवाहर का देश। कलाकारों और कलाओं का देश—हमारा देश।



बंदर की चाल

— नीलकंठ शास्त्री

एक बार ऋषि ऋतुध्वज विश्वकर्मा से किसी बात पर नाराज हो गए। उन्होंने क्रोध में आकर शाप दिया—"तुम बंदर बन जाओ !"

शाप फलीभूत हुआ, तुरंत विश्वकर्मा बंदर के रूप में बदल गया। वह मेरु पर्वत से शालूकिनी नदी किनारे आकर रहने लगा। नदी के तट पर घना जंगल था। बंदर बना विश्वकर्मा तुरंत एक पेड़ पर उछल-कूद मचाने लगा। तभी उसने देखा, सामने से एक विशालकाय दैत्य, एक युवती के साथ चला आ रहा था। उस दैत्य का नाम कंदर था। साथ में थी उसकी पुत्री देववती।

उन्हें देखकर बंदर को शैतानी सूझी। वह दांत किटकिटाता हुआ, दैत्य की तरफ दौड़ा। दैत्य ने तलवार निकाल ली। लेकिन बंदर बच निकला। अब वह देववती की ओर झपटा। उसे साथ लेकर हिमालय पर चला गया। वहां उसने देववती को एक निर्जन गुफा में रखा। खुद नदी में कूद पड़ा।

दैत्य कंदर तलवार लेकर बंदर के पीछे दौड़ता गया, लेकिन उसे पकड़ नहीं पाया। बंदर को नदी में कूदते देख, उसने सोचा—'शायद देववती भी नदी में डूब गई है।' दुखी होकर दैत्य वापस चला गया।

बंदर काफी देर तक नदी के पानी में डुबकियां लगाता रहा। फिर एक पेड़ पर चढ़कर बैठ गया। वह अब कोई नई शैतानी सोच रहा था। अचानक उसने एक यक्ष को देखा। यक्ष भी अपनी पुत्री नंदयंती के साथ आ रहा था। देखकर बंदर गुस्से में आग-बबूला हो गया। नंदयंती को उसने देववती समझ लिया था। सोचने लगा—'यह देववती यहां कैसे आ गई ? मैं तो उसे गुफा में छोड़कर आया था।'

जैसे ही बंदर दांत किटकिटाता नंदयंती की ओर दौड़ा, नंदयंती सहम गई। भयभीत होकर नदी में कूद

पड़ी । काफी देर तक वह नदी की धारा में बहती रही ।

नंदयंती को होश आया, तो उसने खुद को नदी किनारे पाया । वह विशाल बरगद के पेड़ के नीचे एक पत्थर पर जाकर बैठ गई । उसे सारी घटना याद आ रही थी । बंदर की कारस्तानी याद कर, उसकी आंखों में आंसू आ गए । विलाप करती हुई बोली— 'भाग्य की लीला भी कैसी विचित्र है ! मुझे तो राजरानी होने का वरदान मिला था । लेकिन आज मेरी दुर्दशा कोई देखे ?'

कुछ देर बाद नंदयंती का रुदन रुका । तभी पेड़ के शिखर से आवाज आई— 'क्या कोई ऐसा नहीं है, जो जाकर ऋषि ऋतुध्वज को यह बताए कि उनका बेटा वट वृक्ष से बंधा है ।'

आवाज सुन, नंदयंती चकित होकर इधर-उधर देखने लगी— 'यह किसकी आवाज है ? मैं कुछ समझ नहीं पा रही ।'

फिर वही आवाज आई— 'मैं यहां हूं पेड़ के शिखर पर । ऋषि ऋतुध्वज का बेटा जाबालि हूं मैं ।'

नंदयंती ने ऊपर देखा । पेड़ की जटाओं से एक बालक बंधा हुआ था । उसने पूछा—"तुम्हारी यह हालत किसने की ?"

उत्तर में बालक ने कहा—"एक दुष्ट बंदर ने ! . . . मैं नदी में स्नान करने के लिए जा रहा था । बंदर ने मुझे पकड़कर इस पेड़ की जटाओं से बांध दिया । उसने लताओं से मेरे ऊपर छाजन बना दिया । हर वक्त मेरी चौकसी करता रहता । उसने इतनी मजबूती से मुझे बांध दिया है कि न तो यह टूट सकता है, न इस पर कहीं से आक्रमण हो सकता है । कुछ ही समय पहले बंदर मुझे छोड़कर पर्वत पर चला गया है । मैं बिलकुल अकेला हूं. . . बस, अपने तपोबल से जीवित हूं ।"

सुनकर नंदयंती का मन दया से भर गया । बोली—"लगता है, जिस बंदर के कारण मैं कष्ट पा रही हूं, उसी ने तुम्हें भी बांधा है । लेकिन अब तुम चिंता न करो । मैं तुम्हारे पिता तक तुम्हारा संदेश अवश्य पहुंचा दूंगी ।"

नंदयंती चलते-चलते नदी के तट पर आई । वहां उसने ताड़पत्र पर कुछ श्लोक लिखे हुए देखे । समझ गई, ये ऋषि ऋतुध्वज के ही लिखे हुए हैं । उसने वहीं हाथ से वह श्लोक लिख दिया, जो उसने जाबालि के मुंह से सुना था ।

उसके बाद नंदयंती वहां से चल पड़ी । घूमते-घूमते उस गुफा में पहुंची, जहां देववती रह रही थी । देववती की बात सुन, उसे ढाढ़स दिया ।

उधर नंदयंती का लिखा श्लोक ऋतुध्वज ने देखा, तो सारी बात समझ गए । वह सब जगह जाबालि को ढूंढ़ चुके थे, पर सफलता नहीं मिली थी ।

ऋतुध्वज तुरंत राजा इक्ष्वाकु के पास पहुंचे । उनसे कहा—"हे राजन, घोर अन्याय है ! आपके राज्य में एक दुष्ट बंदर ने मेरे ज्ञानवान पुत्र जाबालि को बांध रखा है । उसे मुक्त कराइए ।"

इक्ष्वाकु ने अपने पुत्र शकुनि को ऋतुध्वज की सहायता के लिए भेजा । जल्दी ही ऋतुध्वज ने वह स्थान खोज निकाला, जहां एक ऊंचे वट वृक्ष के शिखर पर जाबालि को बांधा गया था ।

शकुनि ने सब ओर से घूमकर उस लता जाल





को देखा। उन्होंने धनुष पर तीर चढ़ाकर इस तरह चलाया कि वह जाबालि को न लगे। एक के बाद एक कई तीर चलाए, तब कहीं वह उस लता जाल को काट पाए। लेकिन जाबालि के बंधन अब भी पूरी तरह कट नहीं पाए थे।

अब ऋतुध्वज लताओं से घिरे उस वटवृक्ष पर चढ़ गए। ऋषि ने बंधन खोलना चाहा। लेकिन उसे जटाओं से इस तरह बांधा गया था कि प्रयत्न करने पर भी उनसे गांठ नहीं खुली।

इसके बाद शकुनि पेड़ पर चढ़े। लेकिन उनसे भी गांठ नहीं खुली। हारकर वह नीचे आए। धनुष पर कई बाण चढ़ाए। उन्हें इस तरह छोड़ा कि जिस डाल से जाबालि बंधे थे, वह तीन हिस्सों में बंट गई।

अब जाबालि नीचे आ गए। उनके सिर पर अब भी डाल बंधी हुई थी। पिता ऋतुध्वज के साथ वह जंगल में चले गए। ध्यान, पूजा-पाठ और उपासना में समय बिताने लगे।

लेकिन जाबालि के सिर पर बंधी हुई डाल देखकर हर कोई हंसता। अनेक लोगों ने उस बंधन को खोलने की कोशिश की, लेकिन खोल नहीं पाए।

'कैसा अजीब था वह बंदर!'—लोग आश्चर्य प्रकट करते—'अवश्य उसके भीतर कोई दैवी शक्ति होगी। तभी तो उसने ऐसी गांठ बांधी है, जिसे ऋतुध्वज जैसे तपस्वी भी नहीं खोल पाए।'

लोगों की बात सुनकर ऋतुध्वज मौन रह जाते। मन ही मन कहते—'तपस्या का मेरा सारा गर्व बह गया। सचमुच प्रभु की लीला अद्‌भुत है।'

एक दिन आश्रम की वाटिका में ऋतुध्वज जाबालि के साथ बैठे थे। कुछ अन्य ऋषिगण भी थे। ज्ञान की चर्चा हो रही थी। तभी एक बंदर पेड़ से कूदा। जाबालि की ओर बढ़ने लगा।

जाबालि भयभीत होकर चीखा—"बंदर. . . अरे, यही है वह दुष्ट बंदर. . ।"

सभी ऋषि सहम गए। पता नहीं, अब क्या अनर्थ करने आया है यह मायावी बंदर! किंतु ऋतुध्वज ने प्रेम से उसे देखा। कहा—"आओ, कपि! तुम्हारी शक्ति सबने मान ली है। अब जाबालि का कष्ट दूर करने में तुम भी हमारी मदद करो।"

सुनकर बंदर आगे बढ़ा। देखते ही देखते उसने जाबालि के सिर पर बंधी डाल को खोल दिया। सब विस्मय से यह देख रहे थे।

ऋतुध्वज ने प्रसन्नता से कहा—"वर मांगो कपि! तुम जो भी वर मांगोगे, मैं दूंगा।"

सुनकर बंदर ने सिर झुकाकर कहा—"यदि आप मुझे वरदान देना ही चाहते हैं, तो अपने ही दिए घोर शाप को दूर कर दें! मुझे आपने पहचाना नहीं। आप ही के दिए शाप के कारण मैं बंदर बन गया हूं।"

सुनकर ऋतुध्वज एक क्षण के लिए चौंके। फिर मुसकराकर कहा—"तुम बहुत चतुर हो विश्वकर्मा! तुमने ऐसी हालत पैदा की, जिससे मुझे तुम्हारा शाप दूर करना ही पड़ेगा। . . . जाओ, शीघ्र ही तुम अपने वास्तविक रूप में आ जाओगे।"

बंदर बने विश्वकर्मा उन्हें प्रणाम कर, चले गए। ऋषिगण आश्चर्य से यह कौतुक लीला देख रहे थे।●

—वामन पुराण

नट का नाच

— क्षमा शर्मा

शिव को प्रसन्न करने के लिए पार्वती कठोर तप कर रही थीं। शिव ने पार्वती को अपने रास्ते से हटाने के लिए कई प्रयास किए। उन्होंने अपने कई दूत भी पार्वती के पास भेजे। लेकिन पार्वती तो अपने निश्चय पर दृढ़ थीं। वह शिव को ही पति के रूप में वरण करना चाहती थीं। अंत में भगवान शिव ने निश्चय किया कि वह स्वयं पार्वती की परीक्षा लेंगे। उन्होंने ब्राह्मण का वेश धरा और जा पहुंचे देवी पार्वती के पास।

ब्राह्मण को आया देख, पार्वती ने प्रणाम किया। ब्राह्मण बोले— "देवि, मैंने सुना है, आप उस जटाधारी, वस्त्र-धनहीन शिव को प्रसन्न करने के लिए कठोर तपस्या कर रही हैं। लेकिन आप पर्वतराज हिमालय की पुत्री हैं। सुख-सुविधा में पली हैं। शिव के पास तो रहने के लिए झोंपड़ी तक नहीं है।"

ब्राह्मण के मुंह से अपने आराध्य की निंदा सुन, देवी पार्वती को बहुत क्रोध आया। वह बोलीं— "ब्राह्मण देवता, आप पूज्य हैं, इसीलिए मैं अपना संयम नहीं खो रही हूं। अन्यथा मैं आराध्य शिव के बारे में कोई बात नहीं सुन सकती। मुझे तो यह विश्वास नहीं हो रहा कि शिव के बारे में आप ऐसी बातें कैसे कह रहे हैं ? अवश्य आप उन्हें नहीं जानते।"

अब शिव को विश्वास हो गया कि सचमुच पार्वती जी मन से उन्हें चाहती हैं। वह प्रकट हुए। बोले— "देवि, तुम अपनी परीक्षा में खरी उतरीं।"

अपने सामने साक्षात् शिव को खड़ा देख, पार्वती हर्ष विभोर हो उठीं। उन्होंने शिव की वंदना की। कहा— "प्रभु, अनजाने में ही मैंने आपसे कटु वचन कह दिए। क्षमा करें।"

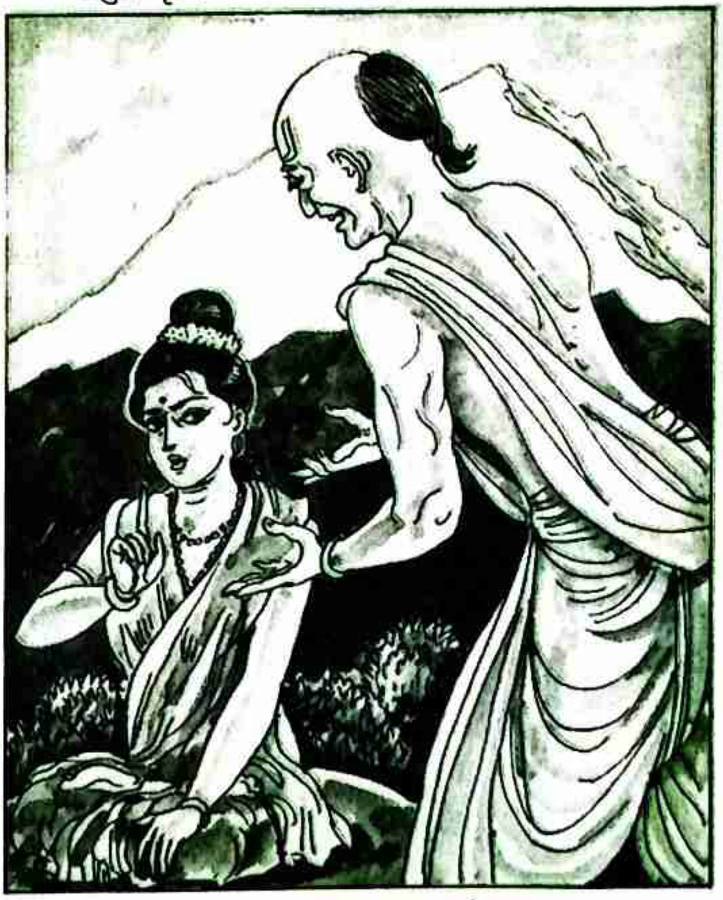
पार्वती की बात सुनकर शिव बोले— "देवि, तुम्हारी तपस्या सफल हुई। अब तुम अपने घर जाओ। तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।"— कहकर भगवान शिव अंतर्धान हो गए।

पार्वती की खुशी देखते ही बनती थी। जिन भगवान शिव के लिए वह इतने दिनों से तपस्या में लीन थीं, उन्होंने साक्षात् दर्शन दे दिए थे।

शिव की आज्ञा पाकर पार्वती अपनी सखियों सहित वापस चल दीं। पार्वतीजी को आया देख, उनके पिता पर्वतराज और मां मेना आनंद विभोर हो उठे। पार्वतीजी के आने की खुशी में नगर को खूब सजाया गया। जगह-जगह उत्सव मनाए गए। गरीबों को वस्त्र और भोजन दिए गए।

पर्वतराज हिमालय ने प्रण लिया था, जब पार्वती वापस आएंगी, वह गंगा स्नान करने जाएंगे। तुरंत लाव-लश्कर तैयार किया गया। रथ-हाथी-घोड़े सजाए गए। महारानी मेना ने जब साथ जाने की जिद की, तो वह बोले— "यह प्रण तो मैंने अकेले ही लिया था। इसे मुझे ही पूरा करने दो। वैसे भी प्यारी बिटिया इतने दिनों बाद घर आई है। तुम उसके साथ रहो।" पत्नी को समझाकर वह चले गए।

तभी नगर में शोर मच गया। पता चला, नगर में अद्भुत नृत्य करने वाला एक नट आया है।



लोग आपस में बात कर रहे थे— "ऐसा नाचने वाला नट तो कभी देखा नहीं।"

—"नाचता क्या है ? देखा, कैसी कलाबाजियां खाता है ? और डमरू ! वह तो इतना अच्छा बजाता है कि पूछो मत।"

नट की ऐसी तारीफ सुनकर रानी की इच्छा हुई कि नट का करतब देखा जाए। उन्होंने तुरंत सेवक बुलाने के लिए भेज दिए।

सेवक उस नट को ले आए। लाल वस्त्र पहने, एक हाथ में डमरू और एक हाथ में सींग लिए। वह बहुत तेजस्वी दिखाई देता था। उसे आया देख, मेना बोलीं— "सुना है, तुम अनोखे करतब दिखाते हो। कुछ हमें भी दिखाओ।"

अब तक राजभवन के आंगन में बहुत-से स्त्री-पुरुष, बच्चे इकट्ठे हो चुके थे।

महारानी मेना की आज्ञा मान, नट ने नाचना शुरू कर दिया। सभी लोग मुग्ध होकर उसे देखने लगे।

'डमरू की ताल पर तो इतना अच्छा सिर्फ भगवान शंकर ही नाच सकते हैं।'—पार्वती ने सोचा। उन्हें लगा, जैसे उनके सामने वह नट नहीं, स्वयं भगवान शंकर नृत्य कर रहे हैं।

नृत्य जब समाप्त हुए, तो सभी नट की प्रशंसा करने लगे। स्वयं महारानी मेना उठकर गईं। थाली भरकर बहुमूल्य रत्न ले आईं। नट की तरफ थाली बढ़ाते हुए बोलीं— "जैसा सुना था, तुम उससे भी



कहीं बहुत अच्छा नृत्य करते हो। बहुत मीठा गाते हो। यह भेंट स्वीकार करो।"

नट ने कहा— "महारानी, इतनी छोटी भेंट मैं स्वीकार नहीं करता।"

'छोटी भेंट !' — महारानी मेना सहित सभी लोग आश्चर्य में पड़ गए— 'बहुमूल्य रत्नों को यह नट छोटी भेंट कह रहा है।'

"तो तुम्हीं बताओ, तुम्हें कौन-सी बड़ी भेंट दी जाए।"— मेना ने पूछा।

सुनकर नट थोड़ा-सा सकुचाया। बोला— "महारानी, मैं जो चीज मागूंगा, उसे सुनकर आप क्रोधित तो न होंगी।"

मेना ने भरोसा दिलाया, तो नट बोला— "यदि कोई अमूल्य उपहार देना ही चाहती हैं, तो अपनी बेटी मुझे उपहार में दे दीजिए।"

नट की यह बात सुनकर मेना क्रोध से भर उठीं। बोलीं— "अरे नट, नहीं जानता, तू क्या कह रहा है ? तूने सिर्फ मेरा या मेरे पति पर्वतराज हिमालय का ही अपमान नहीं किया, बल्कि तू भगवान शंकर का भी अपमान कर रहा है। तुझे पता नहीं, पार्वती ने भगवान शिव को अपना पति चुना है।"

तभी पार्वती के पिता गंगा नहाकर लौटे। सारी बात सुनकर उन्हें भी बहुत क्रोध आया। उन्होंने अपने सेवकों को आज्ञा दी— "इस नट को धक्के देकर महल से बाहर निकाल दो।"

नट यह सुनकर भी मुसकराता रहा। जैसे ही सेवक आगे बढ़े, हिमालय ने देखा, वहां नट है ही नहीं। नट के स्थान पर गदा, पद्मधारी विष्णु वहां खड़े हैं। थोड़ी ही देर में वहां ब्रह्मा दिखाई दिए। कुछ देर में वह सूर्य में बदल गए।

पार्वती को यह पहचानते देर न लगी कि साक्षात् शंकर यह लीला कर रहे हैं। वह उनके सामने जाकर बोलीं— "प्रभु, आप तो तीनों लोकों के स्वामी हैं ? मेरे माता-पिता ने जो कटु वचन आपसे कहे हैं, उनके लिए उन्हें क्षमा कर दीजिए।" ●

— शिव पुराण

चौकी चली

—चित्रा माथुर

एक योगी थे। नाम था चांगदेव। उनकी आयु सैकड़ों वर्ष थी। बहुत से सिद्ध-महात्मा कहते, चांगदेव को हमने हमेशा इसी उम्र का पाया। वह कई बार मृत्यु को लौटा चुके थे। सभी का अनुमान था, चांगदेव की आयु डेढ़ हजार वर्ष की है। कारण वह डेढ़ हजार वर्ष की बीती बातें ऐसे बतलाते, जैसे उन्होंने सब कुछ अपनी आंखों से देखा हो। वह कई सिद्धियां प्राप्त कर चुके थे, इसीलिए उन्हें अभिमान हो गया था। वह सोचते—'मैं अपनी सिद्धि के बल से कुछ भी प्राप्त कर सकता हूं।'

उन्हीं दिनों संत ज्ञानेश्वर का यश दूर-दूर फैल रहा था। लोग कहते— संत ज्ञानेश्वर भगवान विट्ठल के परम भक्त हैं। प्रसन्न हो भगवान ने उन्हें छोटी अवस्था में ही दर्शन दिए थे। सरलता एवं सहजता उनके हृदय में कूट-कूटकर भरी थी। वह ईर्ष्या-द्वेष से दूर, हमेशा प्रभु-भक्ति में लगे रहते थे। उनके व्यवहार से प्रसन्न हो, लोग उनसे मिलने आते। उनका उपदेश सुन, धन्य हो जाते थे।

सिद्ध योगी चांगदेव ने भी संत ज्ञानेश्वर की प्रसिद्धि सुनी। वह उनसे मिलने की सोचते। कभी उनके मन में आता— 'मैं स्वयं सिद्ध योगी हूं। मैं संत ज्ञानेश्वर से मिलने जाऊं। ऐसा कैसे हो सकता है ? मैं उम्र में उनसे बहुत बड़ा हूं। मेरे सामने संत ज्ञानेश्वर कुछ भी नहीं है।'

एक दिन सिद्ध चांगदेव के मन में आया— 'क्यों न संत ज्ञानेश्वर को पत्र ही लिख दूं ?' वह पत्र लिखने लगे। पर वह यह समझ न सके, संत ज्ञानेश्वर को सम्बोधित कैसे करें। उनकी उम्र सोलह वर्ष की है, उन्हें पूज्य लिखना उचित नहीं। वह महाज्ञानी हैं, उन्हें चिरंजीवी लिखना भी ठीक नहीं। वह इस उधेड़बुन में लगे रहें। अंत में बिना लिखे ही चांगदेव ने संत ज्ञानेश्वर को पत्र भेज दिया। वह सोचते— 'संत ज्ञानेश्वर ज्ञानी हैं। स्वयं मेरे विचारों को समझ जाएंगे।'

चांगदेव का पत्र संत ज्ञानेश्वर की पत्नी को मिला। पत्र पढ़कर उन्हें लगा, चांगदेव घमंडी हैं। उनकी पत्नी ने उन्हें लिखा— 'महाराज, आपने डेढ़ हजार वर्ष तप करके कई सिद्धियां प्राप्त की हैं। मुझे क्षमा करेंगे। लगता है, इस पत्र की तरह आप अभी भी कोरे के कोरे हैं।' चांगदेव पत्र पढ़ते ही आग बबूला हो उठे। सोचा— 'क्यों न अब मैं अपनी सिद्धियों से कुछ चमत्कार करूं।' वह संत ज्ञानेश्वर से मिलने चल पड़े।

वह पैदल कैसे जाते ? उन्होंने अपनी सिद्धि से एक बाघ पैदा किया। उसे सांप की लगाम लगाई और चल पड़े बाघ पर बैठकर।

पूजा करके संत ज्ञानेश्वर उठे। शिष्य ने कहा— "गुरू जी, सिद्धयोगी चांगदेव बाघ पर सवार होकर आपसे मिलने आ रहे हैं।"

संत ज्ञानेश्वर हंसे। सोचा— 'चांगदेव सिद्ध योगी हैं, किंतु अहंकारी भी हैं। इनका अहंकार दूर करना चाहिए।'

योगी चांगदेव संत ज्ञानेश्वर की कुटिया के द्वार पर पहुंचे। संत ज्ञानेश्वर उनका सत्कार दरवाजे पर करना चाहते थे। चांगदेव के मिथ्या अभिमान को भी दूर करना था। उन्होंने लकड़ी की बनी चौकी को द्वार तक चलने का आदेश दिया। वह चौकी पर बैठे। चौकी चल पड़ी। द्वार पर पहुंची। चांगदेव इस दृश्य को देखकर अचम्भे में पड़ गए। मन में कहने लगे— 'मैंने डेढ़ हजार वर्ष तपस्या की। मैं केवल बाघ जैसे पशुओं को ही अपने वश में कर पाया हूं। और एक यह है संत ज्ञानेश्वर। इतनी छोटी-सी आयु में जड़ पदार्थों को भी अपने वश में कर लिया है। वह भी सिद्धि से नहीं, भगवान की भक्ति से। सचमुच भक्ति बड़ी है। चौकी तभी तो चलकर आई है।'

अब चांगदेव को अपने किए गए व्यवहार पर पछतावा हुआ। वह संत ज्ञानेश्वर से गले मिले।

चांगदेव का अहंकार नष्ट हो गया। वह उसी समय संत ज्ञानेश्वर के शिष्य बन गए। ●

—भक्ति मीमांसा

अकेले लड़े राम

— लंका सुंदरम

दंडकारण्य में कुटी बनाई गई। राम अपनी भार्या सीता तथा भाई लक्ष्मण के साथ यहां रहने लगे। इस वन में अनेक तपस्वी थे। वे राक्षसों के अत्याचारों से परेशान थे। राक्षस ऋषियों के आश्रम नष्ट कर डालते थे। उन्हें मारकर भी खा जाते थे। राम दंडकारण्य में आए, तो एक जगह हड्डियों का ढेर देखा। पता चला, ये मारे गए ऋषियों के कंकाल हैं। राम ने तभी दंडकारण्य निवासी तपस्वियों के सामने प्रतिज्ञा की— 'मैं राक्षसों का वधकर, दंडकारण्य को निरापद बनाऊंगा।'

राम की प्रतिज्ञा की बात राक्षसों तक पहुंच चुकी थी। शूर्पणखा राम का भेद लेने के लिए आई, मगर राम के इशारे पर लक्ष्मणे ने उसे दंड दिया। वह भागकर अपने भाइयों खर-दूषण के पास पहुंची। ये



दोनों महाबली राक्षस लंकापति रावण के प्रतिनिधि बन, इस क्षेत्र में राज करते थे। राम भी जानते थे— शूर्पणखा राक्षसों को भड़काएगी।

प्रातःकाल के संध्या-वंदन के बाद राम अपने भाई लक्ष्मण और सीता के साथ कुटी के आगे कुशा के आसन पर बैठे थे। सुबह का आहार करके वह सूर्य की सुखद धूप का आनंद ले रहे थे। तभी भयंकर गर्जना सुनाई दी, जैसे प्रलयकाल के मेघ गरज रहे हों।

"यह क्या ! आकाश में बादल का एक भी टुकड़ा नहीं दीख रहा। मेघ कहां से गरज रहे हैं !"— सीता ने प्रश्न किया।

"उधर आकाश में धूल का उठता बवंडर भी है। लगता है, जोर की आंधी आने वाली है !"— लक्ष्मण ने कहा।

राम मुसकरा उठे। बोले— "लक्ष्मण, तुम सीता को किसी गुफा में ले जाओ। वहां वह सुरक्षित रहकर इस आंधी-पानी से बची रहेगी। मैं इस तूफान को देखता हूं।"

"मगर आर्यपुत्र ! तूफान है कहां ?"— सीता आश्चर्य चकित थीं।

"तूफान है, सीते ! यह राक्षसों की उमड़ती सैन्य शक्ति का तूफान है। उनके गरजने का यह शोर है। राक्षसों की सेना और सेनापतियों के रथों से उड़ती हुई धूल आंधी बनकर आकाश पर छा रही है। देख रही हो, निर्मल-आकाश निशाचरों की अपवित्र पद-धूलि से कैसा उदास लग रहा है। तुम गुफा में जाओ। मुझे मर्दन करने दो इन दुरात्माओं का।"— राम दृढ़ स्वर में बोले।

"नहीं, भैया आप भाभी जी को लेकर जाएं। यह दायित्व मुझे पूरा करने दें।"— लक्ष्मण ने धनुष उठाया।

"लक्ष्मण ! दंडकारण्य के राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा मैंने की है। यह कार्य मुझे ही पूरा करना होगा। तुम्हें मेरे चरणों की शपथ। तुम शीघ्र ही जनक नंदिनी को लेकर किसी सुरक्षित जगह चले जाओ।"

राम के विवश करने पर लक्ष्मण ने सीता सहित पर्वत की एक गुफा में आश्रय ले लिया। राम अब निश्चिंत थे। उन्होंने अग्नि के समान प्रकाशवान कवच धारण किया। वह धनुष-बाण लेकर संग्राम के लिए तैयार हो गए। उन्होंने धनुष की प्रत्यंचा को टंकारा। टंकार से दिगंत गूंज उठा।

कुछ ही देर में टिड्डी दल की तरह राम के चारों ओर राक्षसों का दल उमड़ पड़ा। रथ पर सवार खर अट्टहास करता राम के सम्मुख आया। उसके आसपास उसके दो मंत्री भी थे। खर की रक्षा करने के लिए उसको घेरकर राक्षसों का दल खड़ा था।

राक्षसों ने राम पर आक्रमण किया। राम सावधान थे। उन्होंने भी धनुष पर बाण चढ़ा लिया। राक्षसों के एक साथ जबरदस्त आक्रमण से राम के शरीर से रक्त की छोटी-सी धारा निकलने लगी।

राम क्रोध से भर उठे। उन्होंने धनुष से लगातार बाण-वर्षा शुरू कर दी। राम के तीक्ष्ण बाणों से राक्षस हताहत होने लगे। खर के भाई दूषण ने अपनी सेना का भयंकर विनाश देखा। उसने पांच हजार राक्षसों को एक साथ राम पर आक्रमण करने का आदेश दिया। अब वह स्वयं आगे बढ़कर सेना का संचालन करने लगा।

राम और दूषण के बीच तुमुल युद्ध होने लगा। राम ने दूषण के रथ के घोड़ों को मार गिराया। उसके सारथी का सिर काट दिया। फिर राम ने दूषण के वक्षस्थल को निशाना बना, तीन बाण छोड़े। दूषण फरसा लेकर राम की ओर दौड़ा। राम ने बाणों से उसके दोनों हाथ काट दिए। हाथ कटते ही दूषण पृथ्वी पर गिर पड़ा।

दूषण को धराशायी देखकर राक्षस सेना का मनोबल टूटने लगा। बहुत-सी सेना भागने लगी। यह देखकर सेना के प्रमुख वीर आगे बढ़े। इनमें महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रभाची प्रमुख थे। महाकपाल ने विशाल त्रिशूल लिया। स्थूलाक्ष ने खड्ग उठा लिया और प्रभाची फरसा उठाकर राम की ओर दौड़ा। राम ने मंत्रसिद्ध बाणों को तरकश से निकाला। धनुष



की प्रत्यंचा को कानों तक खींचकर एक ही बाण में महाकपाल को यमपुर पहुंचा दिया। फिर प्रभाची के शरीर को बाणों से मथ दिया। इन दोनों बलवान राक्षसों का वधकर, राम ने स्थूलाक्ष की आंखों को बाणों से भर दिया। वह प्राणहीन होकर नीचे गिर पड़ा। राम ने पर्वत के समान स्थिर रहकर दूषण की सम्पूर्ण सेना का वध कर दिया।

"सेना नायको!"— खर ने कहा—"दूषण अपने वीर साथियों सहित युद्ध में मारा गया। तुम राम पर तेजी से आक्रमण करो। उसका वध आवश्यक है।"

बलशाली राक्षस सेना के सेनापति वरूह के साथ श्येनगामी, पृथुग्रीव, यक्षशत्रु, विहंगम, दुर्जय, महामाली तथा हेममाली जैसे युद्ध में निपुण शक्तिशाली राक्षसों ने राम पर एक साथ आक्रमण किया; किंतु राम की बाण-वर्षा के आगे कोई नहीं टिक पाया। राम ने देखते ही देखते एक हजार राक्षसों का वध कर दिया। उनके बाणों ने वहां महाकाल के तांडव का दृश्य उपस्थित कर दिया था।

सारी सेना समाप्त हो गई। रणक्षेत्र में केवल खर, त्रिशिरा तथा राम ही शेष बचे थे। खर की आंखों में

क्रोध की ज्वाला थी। वह राम की ओर बढ़ा। मगर त्रिशिरा ने रोककर कहा— "स्वामी, मैं राम को मारूंगा। यह काम आप मेरे लिए छोड़ दीजिए।"

खर ने उसे जाने दिया। त्रिशिरा और राम भयंकर युद्ध करने लगे। राक्षस ने राम के ललाट पर तीन विषैले बाणों से प्रहार किया। राम उसका वार झेल गए। अब राम ने चौदह बाण छोड़े। चार बाणों ने त्रिशिरा के रथ के चार घोड़ों को मार दिया। बाकी बाणों ने राक्षस के वक्षस्थल को वेध डाला। फिर राम ने तीन बाणों से उसका मस्तक काट गिराया।

अब खर राम के सामने था। खर ने बाणों का प्रहार कर, राम के कवच को तोड़ दिया। भयंकर गर्जना करने लगा। उसने राम के धनुष के भी टुकड़े-टुकड़े कर दिए।

राम ने दूसरा धनुष लिया। प्रत्यंचा चढ़ाकर अगस्त्य द्वारा दिए गए वैष्णव धनुष से खर पर प्रहार किया। उसके मुकुट को काट गिराया। रथ का जुआ भी तोड़ दिया। खर रथ छोड़कर नीचे कूदा। वह गदा लेकर राम की ओर झपटा, किंतु राम ने गदा को भी बाणों की चोट से नष्ट कर दिया।

खर दूसरी गदा लाया, मगर राम ने उसे भी नष्ट कर दिया। अब खर उदास था। मगर उसने हार नहीं मानी। उसने शाल का एक वृक्ष उखाड़ लिया। उसे राम पर फेंका। राम ने वृक्ष को गिरने से पहले ही टुकड़ों में काट दिया। इसके बाद राम ने इंद्र की शक्ति को धनुष पर चढ़ाया।

पूज्य ऋषियों को मन ही मन प्रणाम कर, राम ने वह शक्ति छोड़ दी। वायु में सनसनाहट हुई। पृथ्वी में कम्पन हुआ। शक्ति लगते ही खर का विशाल शरीर कटी डाल की तरह भूमि पर गिर पड़ा।

दंडकारण्य के राक्षसों का अंत हो गया था। तपस्वी प्रसन्न थे। पर्वत की गुफा से निकलकर मुसकराते सीता-लक्ष्मण आए, मगर दूर भागती हुई शूर्पणखा विलाप कर रही थी। ●

— वाल्मीकि रामायण

पहरेदार

—शिवकुमार गोयल

राजा बलि महान दानी के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनके दान के पुण्य से देवता तक भयभीत थे। इंद्र को लगता था, कहीं अपने दान के प्रताप से यह मेरे सिंहासन के अधिकारी न बन जाएं, इसलिए देवताओं में खलबली मची रहती थी।

एक बार राजा बलि ने नर्मदा के पवित्र तट पर अश्वमेध यज्ञ कराया। यज्ञ में देश के कोने-कोने से ऋषि-महर्षि पधारे। इसी यज्ञ में भगवान विष्णु एक छोटे-से ब्रह्मचारी का रूप रखकर आए। देखने में वह बहुत छोटे थे, इसीलिए वह वामन कहलाए। वामन रूप में एक तेजस्वी बालक को देख, राजा बलि ने उसका भी स्वागत किया, किंतु शुक्राचार्य बालक को देखते ही पहचान गए—'यह जरूर कोई देवता छल-बल करने के लिए इस रूप में आया है।' वामन ने तीन पग धरती मांगी, तो शुक्राचार्य ने महाराजा बलि को सावधान किया, किंतु वह वचन दे चुके थे। इसीलिए वामन ने अपने तीन पगों से बलि का सारा राज्य दान में ले लिया। अब बलि को पृथ्वी त्यागकर, रहने के लिए सुतल लोक जाना पड़ा।

भगवान ने वामन बनकर बलि से सारा राज-पाट दान में ले लिया, किंतु महाराजा बलि के त्याग और दान के भार से भगवान झुक गए। बलि सुतल लोक में जाकर रहने लगे, तो भगवान ने सोचा—'बलि जैसे दानी राजा वहां जाकर अगर किसी तरह की परेशानी में पड़ेंगे, तो दुनिया कहेगी, मैंने अपने दाता को कष्ट पहुंचाया। मुझे सुतल लोक में जाकर बलि की चाकरी करनी चाहिए, तभी इस दान के भार से मैं मुक्ति पा सकूंगा।'

यह सोचकर भगवान बलि के महल के द्वारपाल बन गए। वह द्वारपाल के वेश में वहां पहरा देते थे। राजा बलि उन्हें पहचान न सके। इस तरह भगवान बैकुंठ लोक छोड़, सुतल लोक में आकर रहने लगे। बैकुंठ जाते भी कैसे। द्वारपाल का काम ही ऐसा था।

चौबीसों घंटे द्वार पर तैनात।

इधर कई महीने तक भगवान बैकुंठ लोक नहीं पहुंचे, तो लक्ष्मीजी चिंतित हो उठीं। समझ नहीं पाईं, बलि के यज्ञ से भगवान कहां गायब हो गए? खूब खोज कराई, मगर पता नहीं चला। लक्ष्मीजी के साथ दूसरे देवता भी चिंतित थे। एक दिन देवर्षि नारद घूमते हुए बैकुंठ पधारे। लक्ष्मीजी ने उनसे पूछा—"मेरे स्वामी कहां हैं?" नारदजी तो सब जगह जाते थे। उन्हें मालूम था। बस, उन्होंने सारा राज खोल दिया। कहा— "प्रभु तो सुतल लोक में राजा बलि के चौकीदार बने हुए हैं। बलि के पास दान लेने ऐसे गए कि उसकी नौकरी में जकड़ गए। वहां से उनका आना मुझे तो मुश्किल ही लग रहा है।"



लक्ष्मीजी परेशान — क्या करें, क्या न करें। आखिर बहुत सोच-समझकर एक युक्ति निकाली। उन्होंने साधारण महिला का रूप धारण किया और सुतल लोक जा पहुंची। राजा बलि से कहा—"तुम्हारी कोई बहन नहीं और मेरे कोई भाई नहीं। क्या मुझे अपनी बहन बना सकते हो?"

राजा बलि की कोई बहन नहीं थी। वह लक्ष्मीजी की बात सुन, बहुत प्रसन्न हुए। बोले—"आज से तुम मेरी बहन हो। मांगो, अपने इस भाई से क्या मांगती हो?"

लक्ष्मीजी बोलीं—"मेरा भाई बहुत बड़ा दानी है। वह सब कुछ दान कर चुका है। मैं क्या मांगूं, यही संकोच हो रहा है!"

बलि बोले—"बहन की रक्षा करना भाई का धर्म है। उसको सुखी बनाना उसका कर्त्तव्य है। बोलो, तुम्हारी कौन-सी इच्छा पूरी करूं। संकोच मत करो। कुछ तो मांगो। नहीं मांगोगी, तो मैं समझूंगा, मेरी बहन मुझे इस योग्य नहीं समझ रही है।"

—"भैया, ऐसा नहीं है। मेरी मांग बहुत छोटी है। तुम अपने द्वारपाल को अपनी नौकरी से मुक्त कर दो, ताकि मैं उसे ले जा सकूं। वह मेरे प्राणनाथ हैं। उनके बिना मैं नहीं रह सकती।"

राजा बलि चौंके। बोले—"मेरा द्वारपाल तुम्हारा पति! कुछ समझा नहीं।"

अब लक्ष्मीजी अपने रूप में आ गईं। बोलीं—"आपके द्वारपाल साक्षात् नारायण हैं। आपकी दानशीलता से बंधकर उन्हें आपका द्वारपाल होना पड़ा।"

सुनकर राजा बलि भागे-भागे द्वार पर गए। इस समय द्वार पर भगवान अपने चतुर्भुज रूप में खड़े मुसकरा रहे थे।

—"प्रभु, आपने मेरे लिए यह कष्ट सहा। मेरे कारण लक्ष्मीजी परेशान हुईं। मुझे क्षमा करें। मैं आपको इस बंधन से मुक्त करता हूं।"

स्वयं मुक्ति प्रदाता भगवान अपने भक्त से यह सुनकर धन्य-धन्य हो उठे। ● —नारद पुराण

यह है शेर

यह है शेर
यह है शेर !

तन का राजा
मन का राजा
वन का राजा
बड़ा दिलेर ।
यह है शेर !

हलकी गर्दन
भारी गर्दन
हाथी-से तन
होते ढेर ।
यह है शेर !

बड़ा वीर है
बड़ा धीर है
तेज तीर है
है शमशेर ।
यह है शेर !

निजी आन का
निजी बान का
निजी शान का
पक्का शेर ।
यह है शेर !

— द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी

बबलू भइया

सीख कहां से
लिए तमाशे,
देते फिरते
सबको झांसे,
कभी हवा में हाथ नचाते
जल में करते छप्पक छइया ।
डेढ़ साल के बबलू भइया ।

बोल न पाते
बस तुतलाते,
बिना ताल के
गीत सुनाते,
रोते-रोते हंसने लगते,
डगमग चलते पइयां-पइयां ।
डेढ़ साल के बबलू भइया ।

गरमी के दिन
भरी दुपहरी,
तेज धूप है
छत पर बिखरी,
निकल पड़े बस नंगे पैरों,
पांव जले तब दइया-दइया ।
डेढ़ साल के बबलू भइया ।

— विष्णु खन्ना

गुड़िया हुई सयानी

गुड़िया रानी, गुड़िया रानी
रंग-बिरंगी गुड़िया रानी ।

कितनी सुंदर आंखें इसकी
जैसे नीली पांखें इसकी,
इसने पहनी चूनर धानी
गुड़िया रानी, गुड़िया रानी ।

नन्हे-नन्हे होंठ रसीले
कपड़े इसके नीले-पीले,
पैरों में जूते जापानी
गुड़िया रानी, गुड़िया रानी ।

इसे खिलाऊं दूध-मलाई
बिस्कुट-गोली-नानखताई,
और पिलाऊं इसको पानी
गुड़िया रानी, गुड़िया रानी ।

एक नया-सा गुड्डा लाऊं
इस गुड़िया का ब्याह रचाऊं,
मेरी गुड़िया हुई सयानी
गुड़िया रानी, गुड़िया रानी ।

— किशोर काबरा

पानी

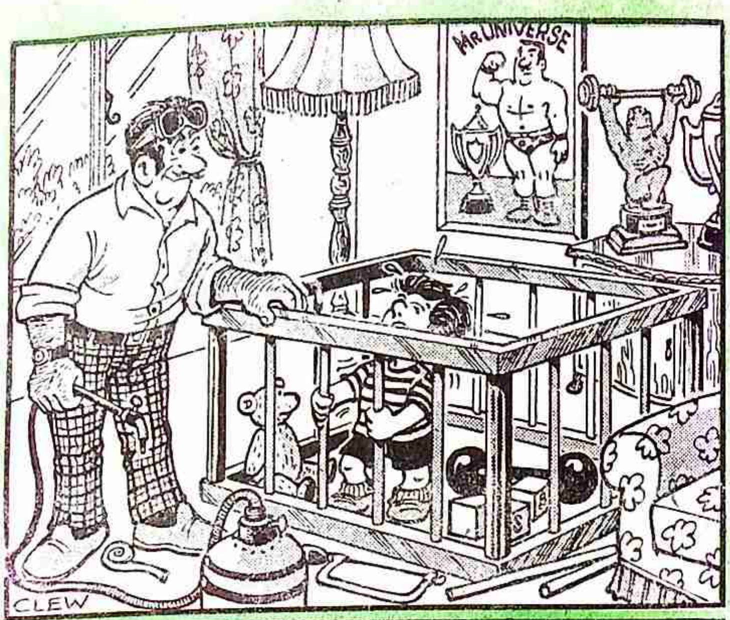
पानी बहुत बड़ा जादूगर
जाने कैसे रूप बदलकर—
सोया करता शिखर-शिखर पर ।

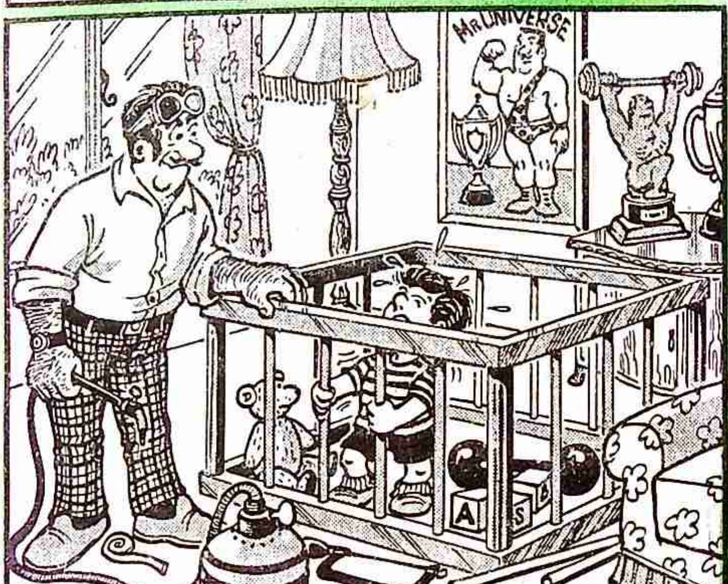


बना खिलाड़ी बादल-बादल
चमक-दमककर घूमा करता,
बूंदें बन-बनकर धरती पर
गरज-गरजकर कूदा करता ।
बंजारों से बिन छप्पर के
इसके घर हैं झील-समंदर ।

सर्दी में जम जाता पानी
गरमी में उड़ जाता पानी,
कहीं-कहीं तो अपने ही पर
हिम बन चड्डी खाता पानी ।
आंसू और पसीना बनकर
रहता है हम सब के अंदर ।

— रत्नप्रकाश शील





आप कितने बुद्धिमान हैं ?

यहां दो चित्र बने हुए हैं। ऊपर पहले बनाया हुआ मूल चित्र है। नीचे इसी चित्र की नकल है। नीचे का चित्र बनाते समय चित्रकार का दिमाग कहीं खो गया। उसने कुछ गलतियां कर दीं। आप सावधानी से दोनों चित्र देखिए। क्या आप बता सकते हैं कि नीचे के चित्र में कितनी गलतियां हैं ? इसमें दस गलतियां हैं। सारी गलतियों का पता लगाने के बाद आप स्वयं इस बात का फैसला कर सकते हैं कि आपकी बुद्धि कितनी तेज है। १० गलतियां ढूंढ़ने वाला **जीनियस;** ६ से ९ तक गलतियां ढूंढ़ने वाला : **बुद्धिमान;** ४ से ५ तक गलतियां ढूंढ़ने वाला : **औसत बुद्धि;** ४ से कम गलतियां ढूंढ़ने वाला : **वह स्वयं सोच ले कि उसे क्या कहा जाए।**

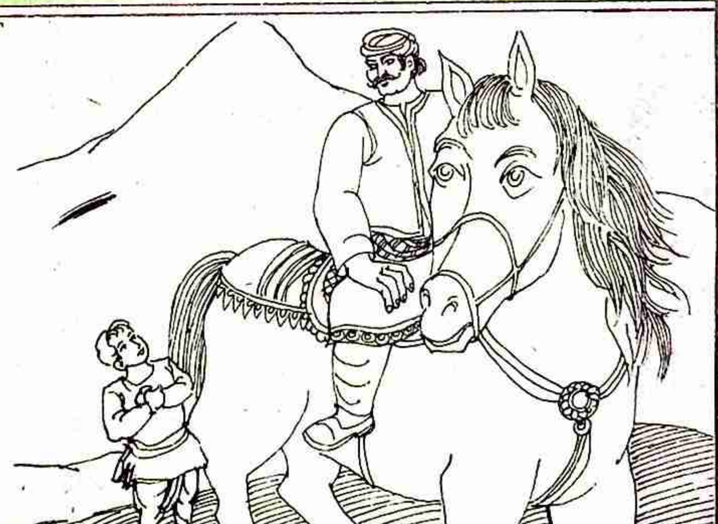
सही उत्तर इसी अंक में किसी जगह दिए जा रहे हैं। आप सावधानी से प्रत्येक पृष्ठ देखिए और उत्तर खोजिए। आपकी बुद्धि की परख के लिए निर्धारित **समय— १५ मिनट।**

चित्र-पहेली : ६५

'मैंने देखा अनोखा सपना' विषय पर रंगीन चित्र बनाइए। उसे १० अप्रैल '८९ तक **'सम्पादक 'नंदन', हिन्दुस्तान टाइम्स हाउस, १८-२० कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली-१०००१** के पते पर भेज दीजिए। चुना गया चित्र पुरस्कृत कर, प्रकाशित किया जाएगा। **परिणाम : जुलाई '८९ अंक**

कहानी-लिखो : ६५

सामने बने चित्र के आधार पर एक कहानी लिखिए। उसे १० अप्रैल '८९ तक 'नंदन' कार्यालय में भेज दीजिए। चुनी गई कहानी छपेगी। पुरस्कार भी मिलेगा। **परिणाम : जून '८९ अंक**





छल-बल

—शांति अग्रवाल

बहुत पुराने समय की बात है। एक बार देवताओं और दैत्यों में झगड़ा हो गया। आपस में युद्ध ठन गया। बड़ी घमासान लड़ाई हुई, जो बहुत दिन तक चलती रही। कभी देवता जीतने लगते, कभी दैत्य। अंत में दैत्यों ने देवताओं को पराजित कर दिया।

देवता भागकर इधर-उधर छिप गए। दैत्य खुशी से फूले नहीं समाए। युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् वे नदी के किनारे वन में तपस्या करने चले गए। देवताओं को जब इस बात का पता चला, तो वे बहुत घबराए। दौड़े-दौड़े विष्णु भगवान के पास पहुंचे। कहने लगे — "हे भगवान, हम आपकी शरण में आए हैं। हमारी रक्षा कीजिए।"

"कहिए, आप पर कौन-सा संकट आ पड़ा है, जो आप सब देवलोक को छोड़कर यहां दौड़े आए हैं और इतने घबराए हुए क्यों हैं ?" — विष्णु भगवान ने पूछा।

"प्रभु, दैत्यों ने हमें युद्ध में परास्त कर दिया। वे हमें तंग करने की नई-नई योजनाएं बनाते रहते हैं। उनके डर से हम इधर-उधर पर्वत-कंदराओं में लुक-छिपकर किसी प्रकार अपना समय काट रहे हैं।" — देवताओं ने दुखी होकर कहा।

"और अब वे तपस्या कर रहे हैं। यदि उन्होंने तपस्या करके बुलाया, तो आपको जाना ही पड़ेगा। फिर यदि उन्होंने आपसे वरदान मांगा, तो वह भी तपस्या के फलस्वरूप आपको देना ही पड़ेगा। वह वरदान हमारे लिए अनिष्टकारी होगा, यह निश्चित है। तब हमारा क्या होगा ?" — देवराज इंद्र ने चिंता प्रकट की।

"तो आप क्या चाहते हैं ?" — भगवान ने शांत भाव से पूछा।

देवता बोले — "भगवन, आप कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे उनकी तपस्या पूर्ण न हो सके।"

यह सुनकर विष्णु भगवान ने तुरंत चमत्कार कर दिखाया। उन्होंने अपने शरीर से एक आकृति उत्पन्न की। बोले — "लीजिए, आपकी समस्या का समाधान हो गया। अब आप सब निश्चिंत होकर वापस जाइए।"

"वह कैसे भगवन् ? यह कौन हैं ?" — देवताओं ने चकित होकर पूछा।

"इसका नाम 'मायामोह' है। यह जिससे बात करेगा, उसे मोहित करके उसकी बुद्धि को भ्रमित कर देगा। अतः आप लोग इससे बात न करें। इसे दैत्यों से ही बात करने दें। फिर आप दैत्यों से युद्ध करें। आप विजयी होंगे।" — ऐसा कहकर भगवान ने मायामोह को दैत्यों के पास जाने का आदेश दिया। सभी देवता वापस चले गए।

मायामोह दैत्यों के पास पहुंचा। मुसकराते हुए उन्हें विजय के लिए बधाई दी।

"आप कौन हैं ?" — दैत्यों ने आश्चर्य से पूछा।

"मैं आपका मित्र हूं। आपकी विजय का समाचार सुनकर आपको बधाई देने चला आया हूं।" — मायामोह ने कहा। फिर पूछा — "लेकिन आप लोग

यह क्या कर रहे हैं ?'' दैत्य बोले — ''हम अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए तपस्या कर रहे हैं, जिससे देवता हमें कभी परास्त न कर सकें ।''

मायामोह जोर से हंसा और कहने लगा — ''यह आप लोग कैसी उलटी बातें कर रहे हैं ? क्या देवता तपस्या नहीं करते ?''

''हां, करते तो हैं ।'' — दैत्यों ने कहा ।

''और वे आपके द्वारा परास्त हुए ?'' — मायामोह ने दूसरा प्रश्न किया ।

''हां, यह भी सच है ।'' — दैत्यों ने उत्तर दिया ।

''यदि तपस्या करने से शक्ति बढ़ती होती, तो वे आपसे कैसे हार जाते ?'' — मायामोह ने समझाया — ''तपस्या करने से तो आपके शरीर की शक्ति कम हो जाएगी । मैं आपका भला चाहता हूं, इसीलिए आपको समझा रहा हूं ।''

''तो हमें अब क्या करना चाहिए ?'' — दैत्यों ने प्रश्न किया ।

''आपने तो देवताओं पर भी विजय प्राप्त की है । आप महान हैं । ऐश्वर्यशाली हैं । आपने अपने बाहु बल से जो ऐश्वर्य प्राप्त किया है, उसका उपभोग करें । खाएं, पिएं और मौज मनाएं । तभी आप शक्तिशाली बनेंगे ।'' — कहकर मायामोह चल दिया ।

उसकी बातों से दैत्यों की बुद्धि भ्रमित हो गई । वे तपस्या छोड़कर भोग-विलास में पड़ गए । अब दिन प्रतिदिन उनकी शक्ति क्षीण होती गई ।

देवता इससे अत्यंत प्रसन्न हुए । एक दिन फिर किसी छोटी-सी बात पर दैत्य, देवताओं से भिड़ गए । अबकी बार देवताओं की जीत हुई । उन्होंने दैत्यों को मार भगाया और देव लोक में आनंद पूर्वक रहने लगे ।

दैत्य अपनी पराजय से बहुत दुखी थे । अपनी पराजय के कारण पर सोच-विचार करने लगे । जब कुछ समझ में नहीं आया, तो उन्होंने मायामोह की खोज करनी शुरू की, पर वह उन्हें कहां मिलता ? वह तो अपना कार्य समाप्त करके कब का जा चुका था ।

अब तो दैत्य बेहद परेशान हुए । दौड़े-दौड़े अपने गुरू शुक्राचार्य जी के पास गए । अपनी समस्या उनके सामने रखी । शुक्राचार्य जी ने ध्यान लगाया और सारी वास्तविकता जान ली । उन्हें दैत्यों पर बड़ा क्रोध आया । बोले — ''अब तुम मेरे पास क्यों आए हो ? मायामोह को तो विष्णु ने देवताओं की सहायता करने के लिए भेजा था । वह तुम्हें उलटी-सीधी बातें समझाकर, भ्रमित कर गया । उस समय तुम्हें मेरी याद क्यों नहीं आई ? तुमने मुझसे आज्ञा लिए बिना उसकी बातों को कैसे मान लिया ?''

दैत्य बहुत रोए, गिड़गिड़ाए । करुण स्वर में बोले — ''गुरु जी, हमसे वास्तव में बड़ी भूल हो गई । हमें क्षमा कर दें । बताइए, अब हम क्या करें ?''

शुक्राचार्य जी बोले — ''अब तो मैं कुछ नहीं कर सकता । तुम अपने गुरु को भूलकर मायामोह के चक्कर में पड़ गए । यही तुम्हारी पराजय का कारण बना । जो भूल तुम कर चुके, उस का फल तो तुम्हें भोगना ही पड़ेगा । हां, फिर कभी कोई समस्या उत्पन्न हो, तो कोई निर्णय लेने से पहले मेरे पास आना ।''

दैत्य निराश होकर लौट गए, उस घड़ी को कोसते हुए, जब वे मायामोह के चक्कर में फंसे थे ।

—विष्णु पुराण



तापसी का वचन

—अभिलाष कौशिक



पुराने समय की बात है । उत्तर दिशा में अलकानगरी थी । वहां का राजा महासेन गुणवान और प्रतापी था । राजा का एक ही बेटा था—सुंदरसेन । जैसा नाम, वैसा ही रूपवान । लोग राजा के भाग्य को सराहते ।

एक बार की बात है । सुंदरसेन घोड़े पर बैठ, अपने मित्रों के साथ शिकार के लिए जा रहा था । तभी कहीं से एक तापसी आई । उसने गेरुए वस्त्र पहने हुए थे । चेहरे पर तेज । ऊंचे स्वर में बोली—"कुमार, आपकी विजय हो !"

राजकुमार उस समय अपने मित्रों के साथ बातचीत में व्यस्त था । उसने तापसी की आवाज नहीं सुनी । इस पर तापसी क्रोधित हो गई । उसने राजकुमार से कहा—"अरे, राजकुमार ! मैंने तो तुम्हारी बहुत बड़ाई सुनी थी । लेकिन तुम तो बड़े घमंडी हो । मेरा आशीर्वाद भी नहीं सुनते !"

राजकुमार ने सुना, तो तुरंत घोड़े से उतरा । उसके साथी भी अपने-अपने घोड़ों से उतरकर वहीं खड़े हो गए । तापसी को प्रणाम कर राजकुमार ने कहा—"क्षमा कीजिए, मुझसे अनजाने में भूल हो गई । . . . आप कौन हैं ? कृपया अपना परिचय दीजिए ।"

तापसी बोली—"तापसी का क्या परिचय ? मैं तो यहां-वहां घूमती रहती हूं । तुम्हारे बारे में सुना था । आज देख लिया । हंसद्वीप से आ रही हूं मैं । वहां के राजा की पुत्री मंदारवती से होगा तुम्हारा विवाह । . . . लेकिन इतना आसान नहीं । तुम्हें कठिनाइयों से गुजरना होगा ।"

सुंदरसेन शाम के समय आखेट से लौटा, तो फिर तापसी से मिला । उसने पूछा—"आपने मंदारवती की बात कही थी । कृपया उसके बारे में विस्तार से बताइए ।"

तापसी ने मुसकराते हुए कहा—"धरती पर मंदारवती से अधिक सुंदर कोई और युवती नहीं । देखकर लगता है, जैसे वह धरती का चंद्रमा है ।"

"क्या मैं मंदारवती को देख सकूंगा ?"—राजकुमार ने पूछा ।

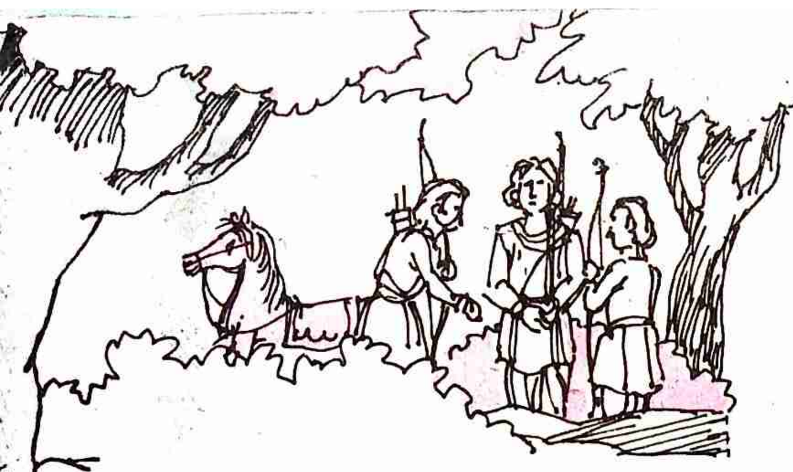
"हां, अवश्य ।"—तापसी बोली—"मैंने मंदारवती का चित्र बनाया है । तुम्हें दिखलाती हूं ।"

तुरंत तापसी ने अपने थैले में से मंदारवती का चित्र निकालकर दिखाया । राजकुमार ने देखा, तो ठगा-सा रह गया । चित्र इतना सजीव था, मानो स्वयं राजकुमारी सामने खड़ी हो । राजकुमार के होठों से एक शब्द तक नहीं निकला । तब उसके एक मित्र ने तापसी से कहा—"चित्र अद्भुत है ! आपकी कला का जवाब नहीं । क्या आप राजकुमार का भी ऐसा ही चित्र बना सकती हैं ?"

"हां, हां, क्यों नहीं ! "—तापसी ने मुसकराते हुए कहा । बात की बात में उसी पट पर राजकुमार का चित्र भी बना दिया । चित्र ऐसा था, जैसे हू-ब-हू राजकुमार ही हो । देखकर सभी ने दांतों तले अंगुली दबा ली ।

तापसी तो चली गई, लेकिन राजकुमार मन ही मन मंदारवती को चाहने लगा । तापसी वे दोनों चित्र भी राजकुमार को ही सौंप गई थी । सुंदरसेन उन्हें देखता, तो मंदारवती से मिलने के लिए बेचैन हो उठता ।

राजकुमार की हालत रानी शशिप्रभा ने देखी । उन्होंने राजा से कहा । एक दिन राजा ने पूछा, तो राजकुमार ने बता दिया—"मैं हंसद्वीप की राजकुमारी मंदारवती से विवाह करूंगा ।"



राजा ने कहा—"तो इसमें चिंता करने की क्या बात है ? हंसद्वीप के राजा मंदारदेव मेरे मित्र हैं। मैं आज ही उनके पास दूत भेजता हूं।"

उसी दिन दूत हंसद्वीप के लिए चल पड़ा। राजा मंदारदेव के पास जाकर उसने कहा—"मुझे अलकानगरी के राजा महासेन ने भेजा है। वह अपने बेटे सुंदरसेन का विवाह मंदारवती से करना चाहते हैं।"

मंदारदेव ने कहा—"मैंने भी राजकुमार को देखा है। मंदारवती के लिए इससे योग्य वर और कौन होगा ? जाकर राजा महासेन से कहना, वह विवाह की तिथि तय करके बता दें।"

दूत ने जाकर राजा महासेन को यह संदेश दिया। राजा ने विवाह का मुहूर्त निकलवाया। समाचार देने के लिए एक और दूत हंसद्वीप भेज दिया। कहलवाया—"शीघ्र ही सुंदरसेन राजकुमारी मंदारवती से विवाह के लिए आएगा।"

इधर मंदारवती ने जबसे तापसी के द्वारा बनाया गया राजकुमार सुंदरसेन का चित्र देखा, वह भी उससे मिलने के लिए उत्सुक हो उठी।

आखिर राजा मंदारदेव ने सोचा—'क्यों न राजकुमारी को अलकानगरी ही भेज दिया जाए। राजा महासेन मेरे मित्र हैं। वह इससे प्रसन्न ही होंगे। स्वयं उचित प्रबंध कर लेंगे।'

शुभ दिन में राजा ने मंदारवती को सेवकों, परिचारिकाओं के साथ जहाज में बैठाकर अलकानगरी के लिए भेज दिया। साथ में मंत्री को भेजा। बहुत-सा धन, कीमती रत्न और उपहार भी थे।

जहाज समुद्र की लहरों पर बढ़ा जा रहा था। अभी यात्रा को कुछ ही दिन हुए थे, अचानक बहुत जोर से बादल घिर आए। सब ओर अंधेरा-सा छा गया। तेज हवाएं चलने लगीं। और फिर मूसलाधार बारिश होने लगी। जहाज समुद्र की भीषण लहरों में डगमगाने लगा। कुछ ही देर में जहाज डूब गया।

कई दिन बाद—मंदारवती को होश आया, तो उसने स्वयं को निर्जन वन में पड़े हुए देखा। उसे एक-एक कर, सारी घटनाएं याद आ रही थीं। वह अपनी हालत के बारे में सोच-सोचकर विलाप करने लगी। मन ही मन कह रही थी—'किस शुभ कार्य के लिए निकली थी और क्या से क्या हो गया !'

वहां से थोड़ी दूर एक आश्रम था। उसमें मतंग नाम के मुनि रहते थे। वह उधर ही आ रहे थे। उन्होंने मंदारवती को रोते हुए देखा, तो पूछा—"तुम कौन हो ? यहां कैसे आ गईं ? रो क्यों रही हो ?"

मंदारवती ने मुनि को सारी आपबीती कह सुनाई। मुनि ने उसे दिलासा दिया। फिर आंखें बंद करके ध्यान में लीन हो गए। कुछ देर बाद मुनि ने आंखें खोलीं। कहा—"चिंता न करो बेटी ! सब ठीक हो जाएगा। यहां से कुछ ही दूर मेरा आश्रम है। उसे अपना घर समझ कर रहो। मेरी कन्या तुम्हारे जैसी ही है। वह तुम्हारे साथ रहेगी। तुम्हें किसी तरह का कष्ट नहीं होगा।"

मुनि का स्नेह पाकर मंदारवती अपना दुःख-दर्द भूल गई। वह मुनि के आश्रम में रहने लगी। मुनि कन्या उसकी सखी बन गई। धीरे-धीरे और भी सखी-सहेलियां बन गईं। उनके साथ ही अध्ययन करती। वन में भ्रमण करती। जंगल के पशु-पक्षी तक उसके मित्र बन गए थे। हालांकि कभी-कभी उसे सुंदरसेन और अपने माता-पिता की याद आती थी। तब उस जहाज की भयानक दुर्घटना की याद से उसके रोंगटे खड़े हो जाते।

उधर लग्न का समय निकट आया, तो राजकुमार सुंदरसेन ने भी हंसद्वीप जाने की तैयारियां शुरू कर दीं। शुभ दिन देखकर अपनी सेना और मंत्रियों के साथ प्रस्थान किया। चलते-चलते वह समुद्र तट पर

बसे शशांकपुर नगर में पहुंचा। वहां राजकुमार सुंदरसेन का भव्य स्वागत हुआ। यहां से राजकुमार जहाज पर बैठ आगे चल दिया।

संयोग की बात, यात्रा का तीसरा दिन ही था कि अचानक बड़ा भयानक समुद्री तूफान आया। लगता था, समुद्र की प्रचंड लहरें जहाज को लील जाएंगी। लहरों पर थपेड़े खाते, डगमगाते जहाज को देख, अचानक सुंदरसेन को तापसी की बात याद आई—'मंदारवती से तुम्हारा विवाह होगा। लेकिन यह इतना आसान नहीं। तुम्हें कठिनाइयों से गुजरना होगा।' सुंदरसेन सोच रहा था—'जो भी कठिनाइयां हों, मैं झेलूंगा। मेरे कारण दूसरों को परेशानी क्यों हो।'

थोड़ी देर तक सुंदरसेन समुद्र की प्रचंड लहरों को देखता रहा। फिर एकाएक उसमें छलांग लगा दी। उसके साथी हक्के-बक्के! वे कुछ सोच ही नहीं पा रहे थे।

और सचमुच चमत्कार हुआ! सुंदरसेन के जल में कूदते ही तूफान का वेग कम होने लगा। लहरों के थपेड़े भी पहले की तरह भयानक नहीं रहे थे। पर इस बीच सुंदरसेन कहीं का कहीं पहुंच चुका था। उसके साथ उसका मित्र दृढ़बुद्धि भी था। कुछ देर में कहीं से घूमती हुई एक नाव उधर आती हुई दिखाई दी। दृढ़बुद्धि ने चिल्लाकर कहा—"देखो, वह नाव! अब हम बच जाएंगे।"

दोनों नाव में बैठ गए। हवा के सहारे चलती हुई नाव किनारे लगी, तो सुंदरसेन और मित्र ने जमीन पर पांव रखे।

सुंदरसेन बोला—"समुद्र से तो निकल आया हूं, लेकिन भाग्य न जाने कहां ले जाए?"

मित्र ने उसे दिलासा देने की कोशिश की। लेकिन सुंदरसेन का हृदय दुःख से फटा जा रहा था। तभी स्नान करने के लिए दो तपस्वी वहां आए।

सुंदरसेन को दुखी देखकर उन्होंने सारी बात पूछी। फिर कहा—"दुखी मत होओ। ईश्वर की लीला विचित्र है। जिसे हम दुःख समझते हैं, उसमें भी कोई न कोई भलाई छिपी होती है . . . तुम्हारे शरीर पर शुभ चिह्न हैं। जल्दी ही तुम्हारे कष्ट दूर हो जाएंगे।"

फिर तपस्वी सुंदरसेन और दृढ़बुद्धि को अपने साथ आश्रम में ले गए। दोनों वहीं रहकर दिन काटने लगे।

एक दिन सुंदरसेन अपने मित्र के साथ मतंग मुनि के आश्रम में गया। वहां सुंदर फूलों-फलों से लदे पेड़ देखकर वहीं विश्राम करने लगा। थोड़ी देर में उसने कुछ मुनि कन्याओं को देखा। वे फूल चुनने के लिए आई थीं।

अचानक सुंदरसेन चौंक उठा। उन कन्याओं में एक की शक्ल हू-ब-हू मंदारवती से मिलती थी। सुंदरसेन सोचने लगा—'मंदारवती यहां कैसे आ सकती है? अवश्य मुझे भ्रम हुआ है।'

फूल चुनकर मुनि कन्याएं जल में स्नान करने के लिए गईं। थोड़ी देर में कन्याओं की चीख सुनाई दी—'अरे! मंदारवती को मगरमच्छ पकड़कर ले जा रहा है। . . . बचाओ! बचाओ!!'

सुंदरसेन ने सुना, तो तुरंत पानी में छलांग लगा दी। मगरमच्छ को मारकर मंदारवती को बचा लिया।

मंदारवती को पता चला कि उसे बचाने वाला कोई और नहीं, सुंदरसेन ही है, तो उसके आनंद की सीमा न रही।

कुछ देर में मतंग मुनि आए, तो सुंदरसेन ने उन्हें प्रणाम किया। मुनि अपने दिव्य ज्ञान से सब समझ गए। बोले—"सुंदरसेन, मंदारवती बड़े सुख से आश्रम में रही है। उसके साथ बेटी जैसी ममता हो गई है। पर अब लगता है, बेटी से बिछुड़ने का समय आ गया। तुम मंदारवती को लेकर अलका नगरी चले जाओ।"

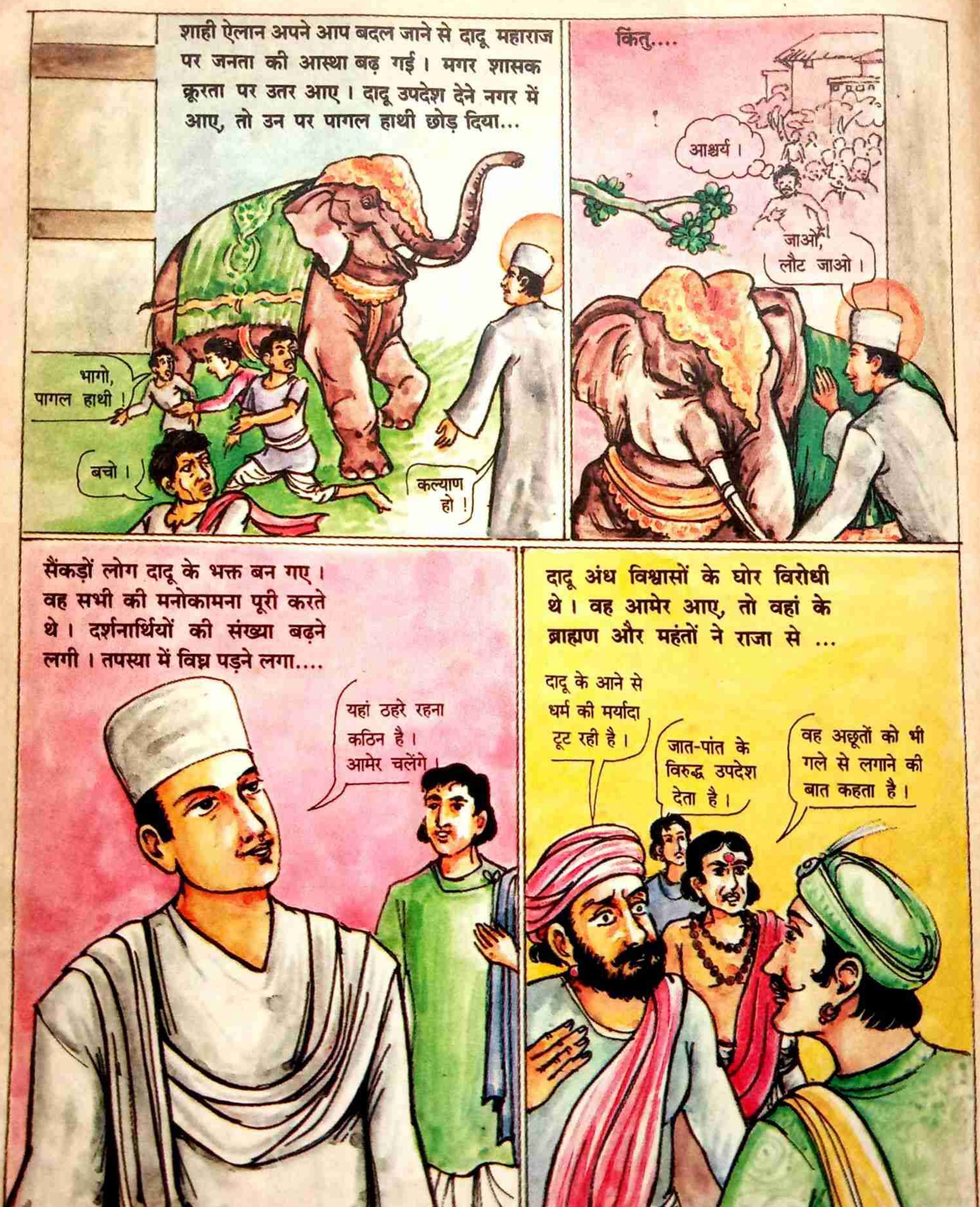
सुंदरसेन मन ही मन सोच रहा था—'तापसी के कठोर वचन मुझे अप्रिय लगे थे। तब कहां पता था, उनमें इतनी मधुरता छिपी है!' •

—कथा सरित्सागर


संत दादू
अहमदाबाद के लोदीराम नागर निःसंतान थे। दिन-रात दान-पुण्य करने पर भी संतान सुख नहीं मिला। एक दिन......
संतान सुख का आशीर्वाद दें महात्मन्।
तुम रोज साबरमती में स्नान करने जाते हो। वहीं मिलेगा पुत्र . . . गुरुवार को. . .
गुरुवार का दिन था....
आश्चर्य! क्या यही है मेरा पुत्र. . .
ऊं. . .
ऊं. . .
लोदीराम उस शिशु को घर ले आए। नाम रखा दादू दयालु। जैसे-जैसे वह बड़ा होता गया...
सारे लक्षण संत-महात्माओं के . . .
बातें तो ऐसी करता है, जैसे वेद-पुराण पढ़े हों. . .
दादू ग्यारह वर्ष के हो गए। एक दिन.....
चल दादू, कांकरिया तालाब पर खेलेंगे।
हां, चल. . .


बच्चे कांकरिया तालाब पर पहुंचे ही थे कि...
भूत . . . भूत . . . भागो !
भागो !
भागो !
अरे, ठहरो। यह तो कोई संत हैं।
तेरे लिए ही तो आया हूं।
दादू ने निडरता से बूढ़े साधु को प्रणाम किया। साधु ने उनको आशीर्वाद दिया....
जा, संसार को समता और प्यार का संदेश दे। जो तेरी शरण आएगा, सुख पाएगा . .
मेरे शरीर में यह सनसनी कैसी हो रही है ?
कहते हैं, वह स्वयं भगवान थे। दादू दयालु ने उन्हें अपना गुरु मान प्राणि-मात्र की सेवा शुरू कर दी।
ऐसा रहा, तो हम कंगाल हो जाएंगे।
इसे रोकना होगा।
भगवान का दिया, भगवान को अर्पण।
माता-पिता को यह अच्छा न लगा। दादू ने घर छोड़ दिया। घूमते-घामते कल्याणपुर की पहाड़ी पर साधना में रम गए। एक दिन...
आ . . . आ . . . आ . . . मैं पहाड़ी का प्रेत हूं। खा जाऊंगा। भाग यहां से . . .


कई दिन ऐसा होता रहा। आखिर एक दिन....
कष्ट मत भोग। मुक्त हो जा . . .
चरणों में नमस्कार. . .
बारह वर्ष वहीं तपस्या की। फिर सांभर आए। सांभर झील के बीचों-बीच आश्रम बनवाया। भेदभाव, ऊंच-नीच, जात-पांत को छोड़, राम भक्ति का प्रचार करने लगे। हलचल मच गई। मुगल शासक ने....
ऐलान कर दो, जो दादू से मिलेगा, उस पर जुर्माना किया जाएगा।
वह सबको गले लगाने को कहता है।
रियाया में गड़बड़ी फैला रहा है।
मगर फिर भी.....
क्यों आए ? बेकार जुर्माना भरना पड़ेगा। हे निरंजन राम !
हम आपके दर्शनों के बिना नहीं रह सकते।
कानून तोड़ने वाले दर्शनार्थियों को गिरफ़्तार करके शहर काजी की अदालत में पेश किया गया....
शाही ऐलान पढ़कर सुनाया जाए।
जो भी शख्स दादू दयालु से न मिलेगा, उस पर जुर्माना . . .
''न'' किसने जोड़ा ?
ऐलान किसने बदला ?
यह ''न'' कहां से जुड़ा . . .



शाही ऐलान अपने आप बदल जाने से दादू महाराज पर जनता की आस्था बढ़ गई । मगर शासक क्रूरता पर उतर आए । दादू उपदेश देने नगर में आए, तो उन पर पागल हाथी छोड़ दिया...
भागो, पागल हाथी !
बचो ।
कल्याण हो !
किंतु....
आश्चर्य ।
जाओ, लौट जाओ ।
सैंकड़ों लोग दादू के भक्त बन गए । वह सभी की मनोकामना पूरी करते थे । दर्शनार्थियों की संख्या बढ़ने लगी । तपस्या में विघ्न पड़ने लगा....
यहां ठहरे रहना कठिन है । आमेर चलेंगे ।
दादू अंध विश्वासों के घोर विरोधी थे । वह आमेर आए, तो वहां के ब्राह्मण और महंतों ने राजा से ...
दादू के आने से धर्म की मर्यादा टूट रही है ।
जात-पांत के विरुद्ध उपदेश देता है ।
वह अछूतों को भी गले से लगाने की बात कहता है ।

हिंदुस्तान टाइम्स का प्रकाशन

-बच्चों का अखबार-

नंदन बाल समाचार

नंदन का शुल्क :
एक वर्ष : ३५ रुपए
दो वर्ष : ६५ रुपए

वर्ष २५, अंक ६, नई दिल्ली; अप्रैल '८९, फाल्गुन-चैत्र; शक सं. १९१०

बाग बगीचे नहीं रहे, बस है काला धुआं

नई दिल्ली। हरे-भरे बगीचों का शहर दिल्ली आज देश के सबसे अधिक प्रदूषित नगरों में है। दुनिया के चार प्रदूषित नगरों में से दिल्ली एक है। प्रदूषण राजधानी के निवासियों के लिए दिन-प्रतिदिन एक गम्भीर समस्या बनता जा रहा है। दिल्ली की सड़कों पर दौड़ते १४ लाख वाहनों का धुआं इस प्रदूषण को बढ़ा रहा है। अन्य कई और भी कारण हैं जो राजधानी के प्रदूषण को बढ़ाने में सहायक हो रहे हैं। यदि तुरंत कुछ न किया गया, तो एक दिन वह आ सकता है जब हर आदमी को सांस लेने के लिए आक्सीजन सिलेंडर साथ लेकर चलना पड़ेगा। प्रदूषण के कारण ही गले आंख-नाक-कान और फेफड़ों की बीमारियां भी बढ़ी हैं।

भारतीय पर्यावरण समिति के लिए दिल्ली के पत्रकार श्रीकांत शर्मा ने 'काली धूप' शीर्षक से एक रिपोर्ट सम्पादित की



है। आदित्य अवस्थी द्वारा तैयार इस रिपोर्ट को प्रवीण जैन ने प्रकाशित किया है। उप राज्यपाल श्री रमेश भंडारी ने रिपोर्ट जारी की।

श्री श्रीकांत शर्मा ने अपने सम्पादकीय में कहा है कि दिल्ली का प्रदूषण इतना बढ़ चुका है कि राजधानी के हिस्से में आने वाली धूप भी अपनी चमक-दमक खोकर काली होने लगी है।

उप राज्यपाल श्री रमेश भंडारी ने कहा कि सरकार तो अपनी ओर से प्रयास कर रही है, इसके साथ ही दिल्ली के नागरिकों को भी पेड़-पौधों से प्रेम करते हुए, राजधानी को हरा-भरा बनाने में मदद करनी चाहिए।

भारतीय पर्यावरण समिति के अध्यक्ष डा. देशबंधु ने इस अवसर पर उप राज्यपाल को पौधे भेंट करते हुए, आशा प्रकट की कि उप राज्यपाल दिल्ली को हरा-भरा बनाएंगे।

बाद में रिपोर्ट की प्रतियों के साथ दो-दो पौधे रक्षा मंत्री श्री कृष्णचन्द्र पंत और केंद्रीय सूचना-प्रसारण मंत्री श्री हरिकिशन लाल भगत को भी भेंट किए गए।

चीन की दीवार

पेरिस। विश्व के आश्चर्यों में से एक 'चीन की दीवार' खस्ता हालत में है। अब फ्रांस, चीन और अमरीका के मशहूर कलाकार इसे बचाने निकले हैं। तरह-तरह की प्रतियोगिताएं, संगीत सम्मेलन, खेल आदि का आयोजन कर पैसा इकट्ठा किया जाएगा, जिससे दीवार की मरम्मत की जा सके।

दोगुना अनाज

नई दिल्ली। खेती के उन्नत तरीकों का इस्तेमाल किया जाए, तो काफी अन्न पैदा किया जा सकता है।इतना कि यदि विश्व की जनसंख्या आज से दोगुनी हो जाए, तब भी सबका पेट भर सके। इसके लिए खाद, पानी और अच्छे बीजों की जरूरत है।

सोच-समझकर इलाज करें

पेइचिंग। चीन के जिआंग्सू प्रांत में एक प्रतिशत से ज्यादा बच्चे अपंग हैं। इस प्रांत में १४ साल से कम उम्र के एक करोड़,उनतालीस लाख,सत्तर हजार बच्चे हैं। इनमें एक लाख इकतालीस हजार बच्चे अपंग हैं। इस अपंगता का बड़ा कारण यह है कि माता-पिता बिना डाक्टरों की सलाह लिए बच्चों को दवाइयां दे देते हैं।

पाठक अपने अखबार को खींचकर अलग निकाल लें।

बच्चों का अखबार -
नंदन बाल समाचार

यदि तुम समय को नष्ट करोगे, तो बाद में वह तुम्हें नष्ट कर देगा ।

—शेक्सपियर

देश के लिए दौड़

नेहरू शताब्दी इन दिनों हम मना रहे हैं । तरह-तरह के कार्यक्रम हो रहे हैं । पिछले दिनों अनेक नगरों में दौड़ें हुईं ।'अपने देश के लिए दौड़'—इसका संदेश था कि हम कहीं रहते हों, किसी धर्म, भाषा को मानते हों पर सबसे पहले भारतीय हैं । हम सब एक हैं—बहुत कुछ भिन्न होने पर भी एक हैं ।

छात्र-छात्राओं ने खास तौर से इस दौड़ में उत्साह से भाग लिया । चाचा नेहरू का संदेश दूर-दूर तक पहुंचा । नेहरू जी निडर होकर जीवन भर देश का काम करते रहे । नई पीढ़ी को उनके बारे में पढ़ना और जानना चाहिए ।

बाल कल्याण संस्थान समारोह

कानपुर । भारतीय बाल कल्याण संस्थान का समारोह यहां हुआ । इसमें ए.एल. वलिअप्पा (मद्रास), पी.एस. आचार्य रसिक पुत्तिगे (चेन्नापटना), कु. रमा रतन (चंडीगढ़) तथा हिंदी के बाल साहित्यकारों में सर्वश्री किशोरीरमण टंडन (बम्बई), सीताराम गुप्त (जयपुर), सुषमा श्रीवास्तव (आकाशवाणी लखनऊ) को ५०१ रुपए की राशि, उत्तरीय तथा अन्य उपहार भेंट किए गए । अध्यक्षता डा. बिशन नारायण अस्थाना ने की । समारोह से पूर्व बाल साहित्य के प्रकाशन की समस्या पर विचार गोष्ठी हुई । गोष्ठी की अध्यक्षता श्री गिरिराज किशोर ने की ।

विज्ञान रेलगाड़ी

बम्बई । देश के लोगों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रति रुचि पैदा करने के लिए राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालय परिषद् एक विज्ञान रेलगाड़ी चलाएगी । परिषद की निदेशक डा. सरोज घोष ने बताया कि सरकार इस पर दो करोड़ रुपए खर्च करेगी । यह रेलगाड़ी ६ मास में तैयार हो जाएगी ।

खंभे की जेल

इटारसी । एक आदमी जंगल में टेलीफोन लाइन ठीक करने गया । वह खंभे पर चढ़ा ही था कि एक शेर वहां आ धमका । शेर ठीक खंभे के नीचे बैठ भी गया । उस आदमी ने उसी लाइन से बैतूल और इटारसी के अधिकारियों को शेर के आने की सूचना दी । अधिकारी वहां चार घंटे में पहुंच सके । तब तक शेर उसी खंभे के नीचे बैठा रहा । बेचारा टेलीफोन कर्मचारी चार घंटे तक उस खंभे से लटका रहा ।

पुराना औजार

ट्यूनिस । यहां खुदाई के दौरान लाखों वर्ष पुराना पत्थर का औजार मिला है । वैज्ञानिकों का मानना है कि यह दुनिया का सबसे पुराना औजार है ।

नया सुपरमैन

क्रिस्टलाइन (अमरीका) । एक बच्चा दूरदर्शन पर 'सुपरमैन' धारावाहिक देख रहा था । उसे लगा कि वह भी सुपरमैन की तरह हवा में उड़ सकता है । बस जिस तकिए के सहारे वह लेटा था, उसी को लेकर उसने हवा में छलांग लगा दी । यह बच्चा दो मंजिले भवन से कूदा, मगर उसे चोट नहीं आई ।

बाज बचें

मनीला । फिलीपींस के विशाल बाज खत्म हो रहे हैं । यह बाज यदि अपने दोनों पंख फैलाए, तो उनकी लम्बाई दो मीटर होती है । इसका वजन नौ-दस किलोग्राम होता है ।

बच्चों को देखो

वाशिंगटन । अमरीका में लाखों बच्चे और किशोर मनोरोगों का शिकार हो रहे हैं । मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि इन बच्चों के जीवन में स्नेह का अभाव है । अक्सर माता-पिता अपने-अपने कामों में लगे रहते हैं । बच्चों को पूरा समय नहीं दे पाते हैं । बच्चों को मनोरोग-अस्पतालों में भी दाखिल कराया जाता है, मगर वहां से लौटने के बाद भी उनकी स्थिति में कोई ज्यादा सुधार नहीं हो पाता, क्योंकि घर का वातावरण तो बदलता नहीं है ।

पेड़ बैंक

चंडीगढ़ । हरियाणा के हिसार विश्वविद्यालय में पेड़ों के लिए एक बैंक बनाया गया है । यहां अलग-अलग प्रजातियों के पेड़ों को खत्म होने से बचाने के उपाय खोजे जाएंगे । यह बैंक सौ एकड़ में फैला है । इसमें चार हजार किस्म के पेड़ लगाए जाएंगे । ये पेड़ भारत के अलग-अलग हिस्सों, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, अमरीका और अरब देशों से मंगवाए जाएंगे ।

दिमाग और शरीर

नई दिल्ली । यदि आप दिमागी रूप से परेशान हैं, तो संभव है कि आप अपनी बीमारी से जल्दी ठीक न हो सकें । बीमारियों से लड़ने में शांत दिमाग काफी मदद करता है । डाक्टरों ने पाया है कि कई शारीरिक बीमारियों को दिमाग का इलाज करके ठीक किया जा सकता है ।

नन्हा डाक्टर

टोकियो। आजकल वैज्ञानिक एक नन्हा-सा रोबोट बनाने में जुटे हैं। यह रोबोट डाक्टर होगा। शरीर के अंदर जाकर खराब ऊतकों का पता लगाएगा। उन्हें नष्ट करेगा और बाहर आ जाएगा।

कैसे-कैसे सपने

नई दिल्ली। आपके सपने बताते हैं कि आप किन हालात से गुजर रहे हैं। अक्सर बीमारी से पहले और बीमारी के दिनों में डरावने और दुःख भरे सपने आते हैं। दिन में किए गए काम तो सपनों को प्रभावित करते ही हैं। यदि सोने की जगह आराम दायक न हो, कमरे का वातावरण ठीक न हो, तब भी बुरे सपने आते हैं।

आबादी बढ़ेगी

मनीला। इस सदी के अंत तक दुनिया के सबसे ज्यादा आबादी वाले २५ देशों में १२ देश एशिया के होंगे। भारत के चार महानगरों दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास की आबादी भी बढ़कर दोगुनी हो जाएगी।

महिला होटल

बोन। पश्चिम जर्मनी में एक 'महिला होटल' खोला गया है। इस होटल का पूरा प्रबंध महिलाएं ही देखेंगी। इसमें सिर्फ महिलाओं के ही ठहरने की व्यवस्था होगी। ऐसे 'महिला होटल' अमरीका में भी हैं।

सबसे बूढ़ा डाकिया

मद्रास। १०२ वर्षीय जेसूट ब्रदर का डिंडिगल (तमिलनाडु) में देहांत। ब्रदर पीटर ने सत्तर वर्ष तक डाक बांटने का काम किया। यह काम उन्होंने १९१३ से १९८३ तक किया। १८८६ में जन्मे पीटर ब्रदर, सेवा निवृत्त होने के बाद भी अतिरिक्त विभागीय पोस्टमास्टर के रूप में कार्य करते रहे।

छोटे दांत

होनोलूलू। जैसे-जैसे समय बीत रहा है, मनुष्य के दांत छोटे होते जा रहे हैं। एक लाख वर्ष पूर्व से हमारे पूर्वजों के दांतों के आकार से आज दांत पचास प्रतिशत छोटे हो गए हैं। मानव दांतों का आकार प्रति हजार वर्ष में एक प्रतिशत छोटा हो रहा है।

दोनों भागे

पुणे। यहां के चिड़िया घर में यह शेर-शेरनी पिंजरे से भाग निकले। चिड़िया घर के कर्मचारी शेरों के पिंजरे को साफ करने आए। शेरों ने मौका देखा और भाग निकले। शेरनी को बाहर का वातावरण कुछ खास पसंद नहीं आया, इसलिए वह जल्दी ही वापस आ गई। मगर शेर सैर को निकल पड़ा। उसके पीछे शोरगुल मचाते चिड़िया घर के कर्मचारी। बड़ी मुश्किल से शेर को पकड़ा जा सका।

एक हजार वर्षों से

त्रिचूर। यहां पास के गांव में यज्ञ की अग्नि पिछले एक हजार वर्षों से जल रही है। यज्ञ का यह कुंड काफी गहरा है। इसमें हमेशा लौ न भी दिखाई देती हो, लेकिन अंगारे हमेशा जलते रहते हैं। प्रतिदिन इस हवनकुंड में नारियल, नौ तरह के अन्न तथा घी चढ़ाया जाता है। इस अग्नि को प्रज्वलित करने का उल्लेख ताम्रपत्रों पर है।

बूढ़े बच्चे

पुणे। यहां पर बूढ़े लोगों के लिए एक विश्वविद्यालय खोला जाएगा। इसमें ये लोग अपने मनपसंद विषय पढ़ सकेंगे। ब्रिटेन में इसी तरह का एक विश्वविद्यालय है। इसमें सौ लोग शिक्षा पा सकेंगे। उन्हें हर तरह की सुविधाएं प्रदान की जाएंगी।

नन्हे समाचार

- ☐ अमरीका के फ्लोरिडा राज्य में घास के १६ किलोमीटर लम्बे मैदान में आग लग गई। उसे बुझाने में हेलीकाप्टरों की मदद ली गई।
- ☐ आस्ट्रेलिया में सर्कस का एक बाघ गुस्से में भरकर दर्शकों पर झपटा। सर्कस के कलाकार ने उसे दुम पकड़कर घसीट लिया। बाघ ने कलाकार को घायल कर दिया, पर उसने बाघ को छोड़ा नहीं। इस तरह बहुत-से लोगों को बचा लिया।
- ☐ कुछ लोग ८ गिलहरियों को बोरी में बंद करके चुपचाप बेचने जा रहे थे। दो गिलहरियां दम घुटने से मर गईं। बाकी को दोबारा वन में छोड़ दिया गया।
- ☐ तिरुपति मंदिर में अप्रैल १९८७ से भक्तों द्वारा चढ़ाए गए केश नीलाम करने पर बीस लाख रुपए की आमदनी हुई।
- ☐ नार्वे में इस बार कम सर्दी पड़ी। इतनी कम कि बर्फ पर होने वाले खेलों के लिए बर्फ रेलगाड़ियों में दूर से मंगवाई गई। लाखों रुपए खर्च हुए।
- ☐ भू-वैज्ञानिकों का कहना है कि धरती दो अरब वर्ष की हो गई है।
- ☐ इंग्लैंड में एक हजार वर्ष पुराना पेनी का सिक्का किसी को मिला, जो सत्रह लाख रुपए में बिका।
- ☐ दक्षिणी ध्रुव के पास समुद्र में अर्जेंटाइना का एक जहाज डूब गया। उसका तेल रिसकर पानी में फैल गया। इससे हजारों जल जीव मर गए।
- ☐ चित्रदुर्ग में किसी का बैग खो गया। उसमें हजारों रुपए के हीरे थे। मालिक ने पुलिस में रिपोर्ट लिखाई। एक सुबह बैग दरवाजे पर पड़ा मिला। हीरे उसमें सुरक्षित थे।

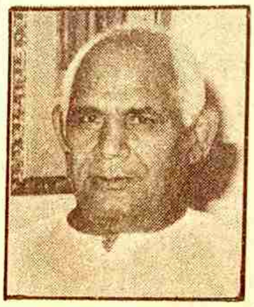
सचित्र समाचार



↑ संयुक्त राष्ट्र के महासचिव पेरिज द कुइयार को जवाहरलाल नेहरू अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना पुरस्कार राष्ट्रपति आर. वेंकटरमण ने दिया। पुरस्कार में पंद्रह लाख रुपए और मानपत्र दिया गया।



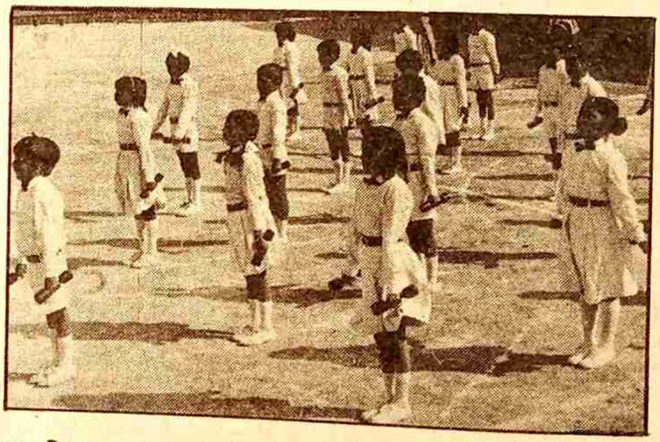
जाने-माने हास्य कवि एवं लेखक डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी : इस वर्ष पद्मश्री से सम्मानित। →



← गुरु हनुमान : इस वर्ष द्रोण पुरस्कार से सम्मानित।



← त्रिवेंद्रम के कलाकार मीथरन ने तीस हजार माचिस की तीलियों से एफिल टावर बनाया है। इसे पेरिस में एफिल टावर शताब्दी समारोह में प्रदर्शित किया जाएगा।



→ एलकान पब्लिक स्कूल, मयूरविहार, दिल्ली की आधारशिला सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री हरकिशनलाल भगत ने रखी। इस अवसर पर बच्चों ने आकर्षक कार्यक्रम प्रस्तुत किए।

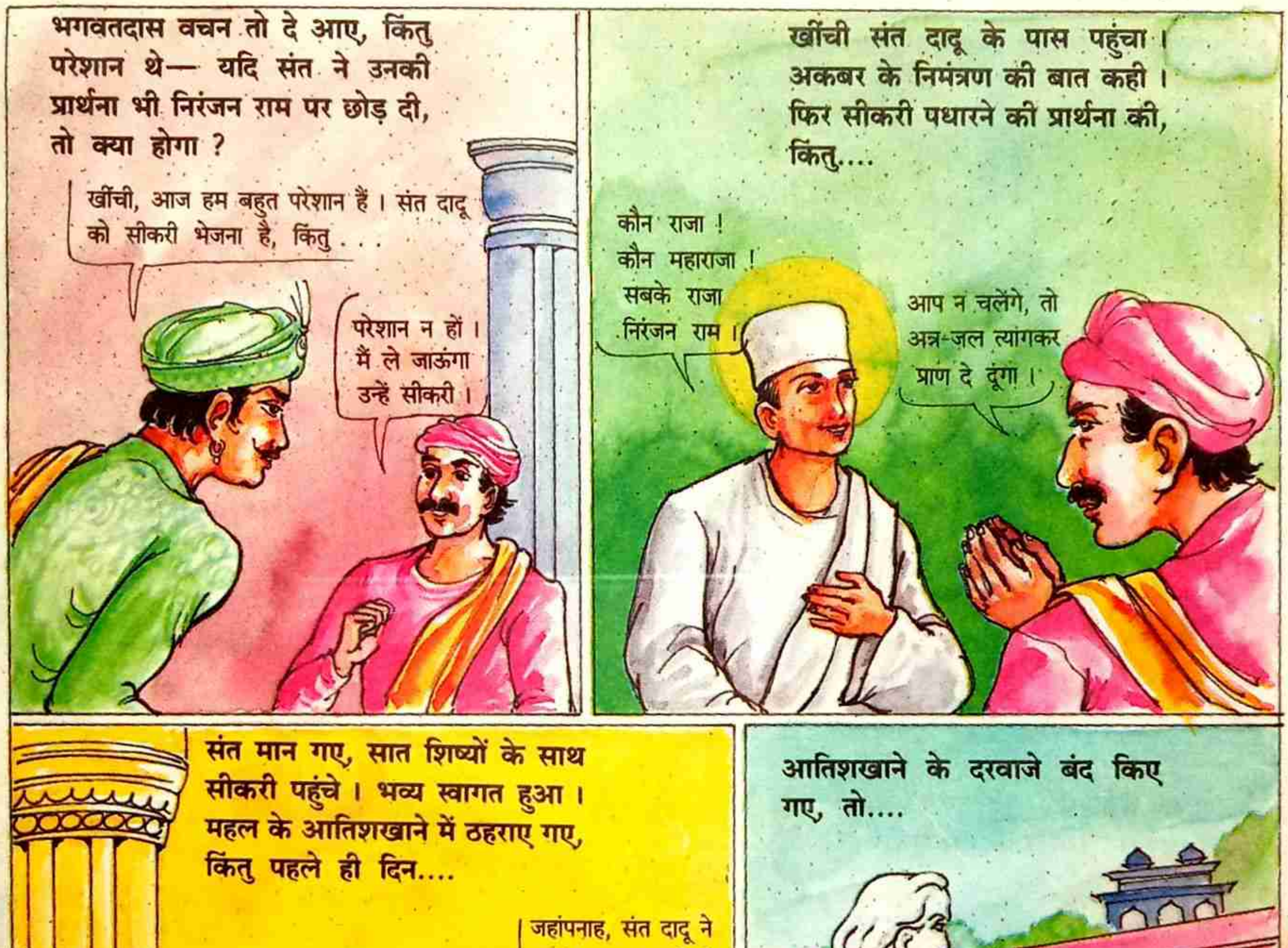


जापान की हवाई यात्राओं में यात्रियों को यह नन्हा-सा वीडियो दिया जाएगा। जब चाहो बटन दबाकर अपना मनपसंद कार्यक्रम देख लो। →

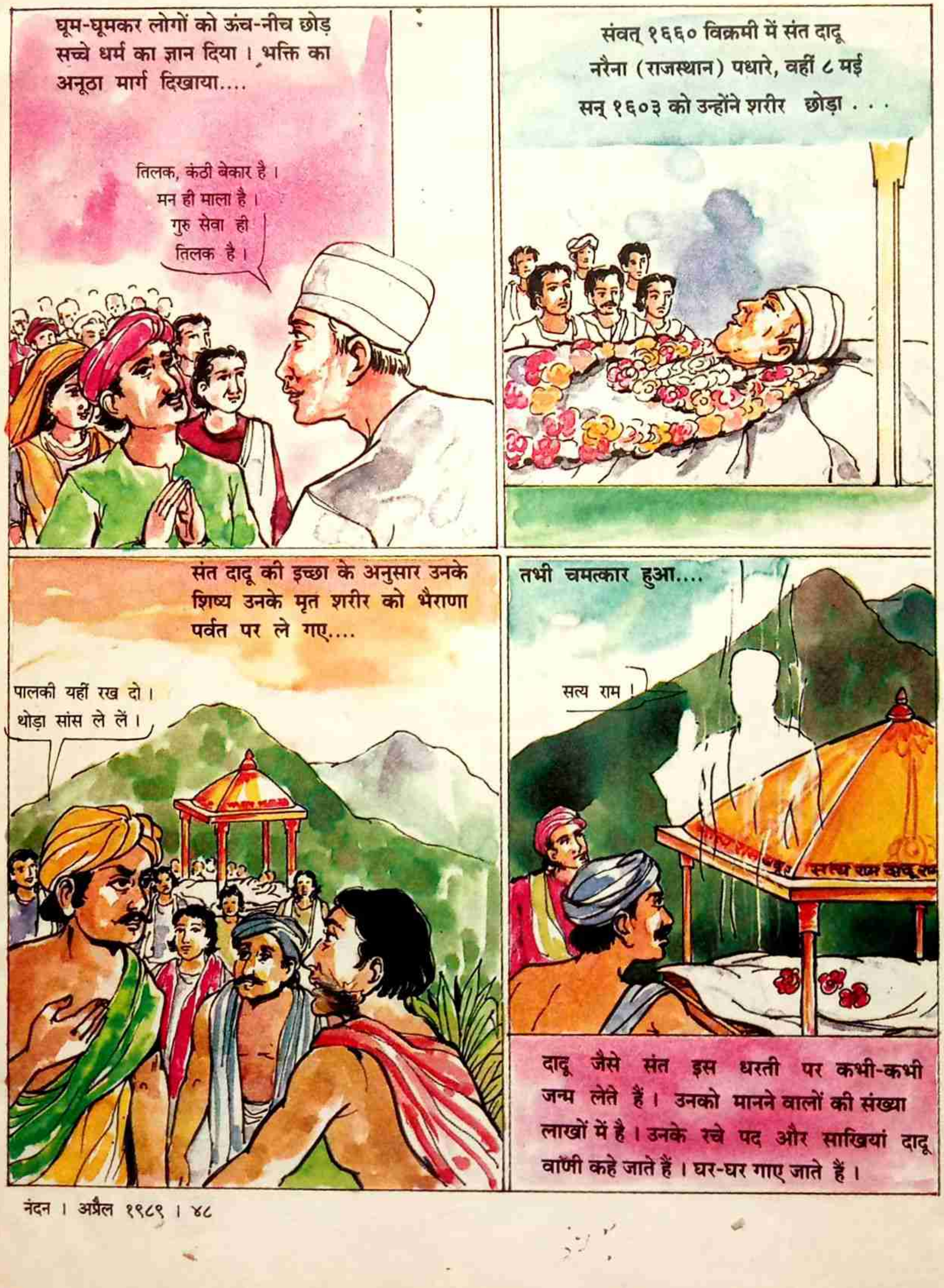


← जैमिनी नर्सरी स्कूल मोदीनगर में उत्सव। बच्चों ने रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत किए।


आमेर नरेश भगवतदास संत दादू के पास आए....
आप आमेर की जनता को धर्म भ्रष्ट कर रहे हैं। कृपया यहां से चले जाएं।
निरंजन राम कहेंगे, तो चला जाऊंगा।
और तभी....
बोल दादू, कर दूं आमेर का सर्वनाश
त्राहि माम्! त्राहि माम्!
निरंजन राम का नाम लो राजन।
दादू संत कवि थे। सदाचार की बातें पद और साखियों के रूप में सुनाते।
स्वयं को परखो, स्वयं को जानो। धर्म वह, जो सब का कल्याण करे।
सम्राट अकबर ने भी संत दादू के बारे में सुना। भगवतदास से उन्हें सीकरी लाने को कहा।
हमने सुना है, बहुत पहुंचे हुए संत हैं। सीकरी बुला लो। हम दर्शन करना चाहते हैं।
मैं . . . प्रबंध करता हूं।


भगवतदास वचन तो दे आए, किंतु परेशान थे— यदि संत ने उनकी प्रार्थना भी निरंजन राम पर छोड़ दी, तो क्या होगा ?
खींची, आज हम बहुत परेशान हैं। संत दादू को सीकरी भेजना है, किंतु . . .
परेशान न हों। मैं ले जाऊंगा उन्हें सीकरी।
खींची संत दादू के पास पहुंचा। अकबर के निमंत्रण की बात कही। फिर सीकरी पधारने की प्रार्थना की, किंतु....
कौन राजा ! कौन महाराजा ! सबके राजा निरंजन राम।
आप न चलेंगे, तो अन्न-जल त्यागकर प्राण दे दूंगा।
संत मान गए, सात शिष्यों के साथ सीकरी पहुंचे। भव्य स्वागत हुआ। महल के आतिशखाने में ठहराए गए, किंतु पहले ही दिन....
जहांपनाह, संत दादू ने शाही पकवान खाने से इंकार कर दिया। वे मांगा हुआ अन्न ही खा रहे हैं।
शाही तौहीन ! सम्राट के मेहमान भिक्षा मांगकर खाएंगे।
आतिशखाने के सारे दरवाजे बंद कर दो। भिक्षा मांगने मत जाने दो।
आतिशखाने के दरवाजे बंद किए गए, तो....


अकबर को पता चला, तो सन्न रह गया । संत दादू का भक्त बन गया । और एक दिन....
आपने मुझे ज्ञान का अनमोल खजाना बख्शा । मेरी ओर से यह सब . . .
मैं इनका क्या करूंगा ? यदि कुछ देना ही चाहते हो, तो गो-हत्या बंद करा दो ।
गो-हत्या बंद करा दी गई । दरबारी तिलमिला उठे । अकबर पर दबाव डालने लगे कि संत दादू की परीक्षा सरे दरबार ली जाए । संत को दरबार में बुलाया गया....
यह क्या ? गुरु जी के बैठने का कोई स्थान नहीं ।
अब पता चलेगा ।
देखें, कहां बैठेंगे ।
संत दादू के ''निरंजन राम'' पुकारते ही....
सचमुच दादू महान हैं ।
आप यहां बिराजें
अचरज !
कमाल है !
अकबरी दरबार संत दादू के सामने नतमस्तक हो गया । उस दिन....
सत्य की उपासना करो । अहंकार छोड़कर वे काम करो, जो दूसरों को सुख दें । यही धर्म है ।


घूम-घूमकर लोगों को ऊंच-नीच छोड़ सच्चे धर्म का ज्ञान दिया । भक्ति का अनूठा मार्ग दिखाया....
तिलक, कंठी बेकार है । मन ही माला है । गुरु सेवा ही तिलक है ।
संवत् १६६० विक्रमी में संत दादू नरैना (राजस्थान) पधारे, वहीं ८ मई सन् १६०३ को उन्होंने शरीर छोड़ा . . .
संत दादू की इच्छा के अनुसार उनके शिष्य उनके मृत शरीर को भैराणा पर्वत पर ले गए....
पालकी यहीं रख दो । थोड़ा सांस ले लें ।
तभी चमत्कार हुआ....
सत्य राम !
दादू जैसे संत इस धरती पर कभी-कभी जन्म लेते हैं । उनको मानने वालों की संख्या लाखों में है । उनके रचे पद और साखियां दादू वाणी कहे जाते हैं । घर-घर गाए जाते हैं ।

नीली झील

— विमला रस्तोगी

बहुत समय पहले सौवीर नाम का एक राजा था। उसकी रानी का नाम था सुतीक्ष्णा। उनके एक बेटा और एक बेटी थे। दोनों के नाम प्रीतपाल और सुकन्या थे। राजा-रानी राजकुमार और राजकुमारी को बहुत चाहते थे। दोनों थे भी बड़े होनहार।

समय के साथ-साथ राजकुमार व राजकुमारी बड़े होने लगे। तभी एक दिन रानी बीमार हो गईं। राजवैद्य ने चिकित्सा की। राजवैद्य के साथ आस-पड़ोस के भी चिकित्सक आए, किंतु रानी को लाभ नहीं हुआ। रानी समझ गईं कि उनका अंत समय निकट है। उसने राजा को अपने पास बुलाकर कहा — "मैं अधिक दिन जीवित न रह सकूंगी। मेरी एक अंतिम इच्छा है।"

"कहो, मैं अवश्य पूरी करूंगा।" — राजा ने कहा।

"आप पहले वचन दीजिए।"

रानी की इच्छानुसार राजा ने वचन दिया। रानी बोली — "मेरी मृत्यु के बाद आप दोनों बच्चों का पूरा ध्यान रखेंगे। याद रखना, उन्हें मेरा अभाव कभी न खटके। आप दूसरा विवाह न करना।"

"ऐसा ही होगा। तुम चिंता न करो।" — राजा ने वायदा किया।

उसी रात रानी की हालत ज्यादा खराब हो गई। कुछ ही दिन में वह स्वर्ग सिधार गई। राजा ने दुखी मन से रानी का क्रिया-कर्म कर दिया।

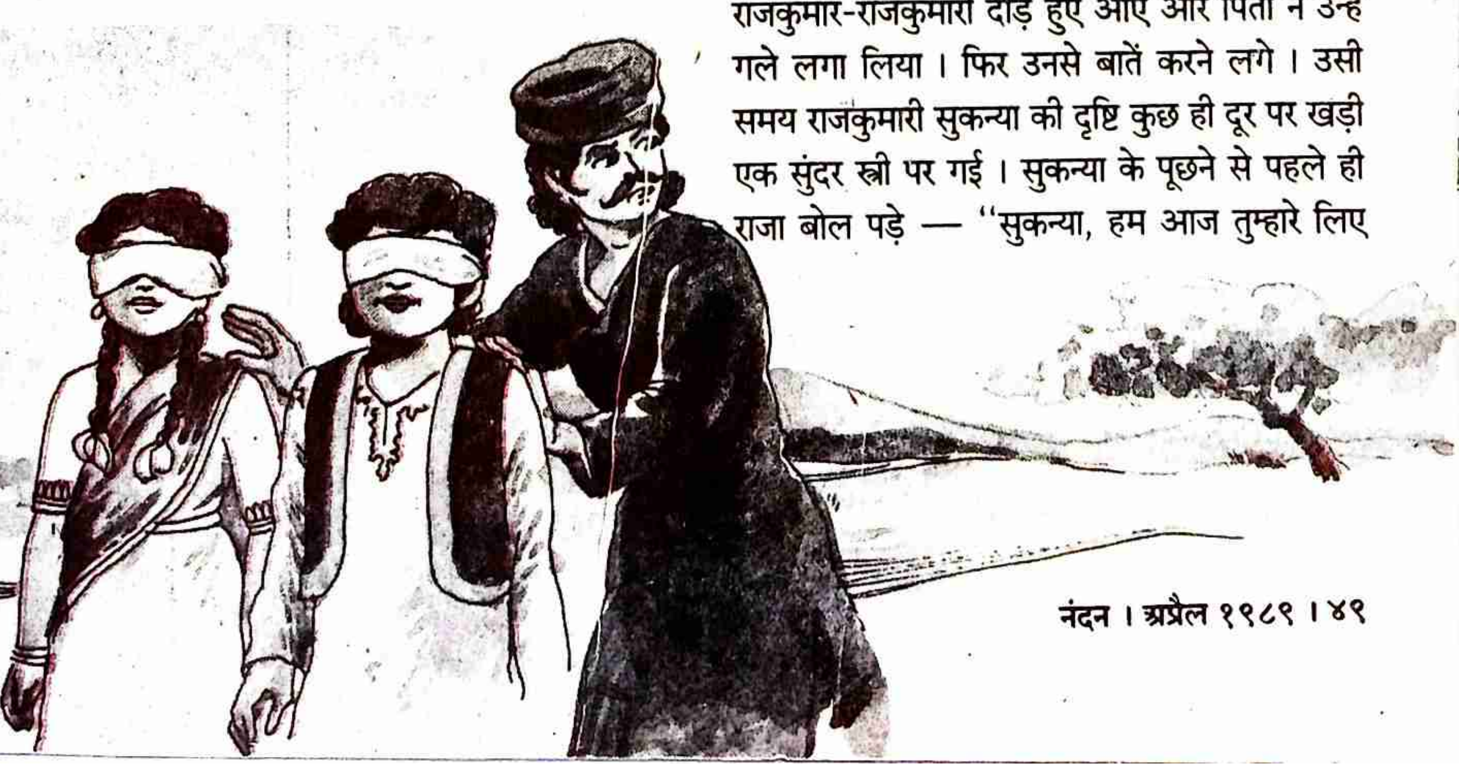
राजा को शिकार का बहुत शौक था। शिकार से लौटते ही बच्चों को प्यार करते, उनसे बात करते। वह लगभग प्रतिदिन शिकार खेलने जाते। जब वह शिकार पर जाते, तो रास्ते में पत्थर पर एक सुंदर स्त्री बैठी मिलती। गोरा रंग, बड़ी आंखें, लम्बे बाल, क़ीमती वस्त्र। राजा उसकी ओर ध्यान दिए बिना ही निकल जाते थे। एक दिन जब राजा शिकार से लौट रहे थे, तो उस स्त्री ने उन्हें रोककर कहा — "राजन, मैं प्रतिदिन यहां आती हूं। आप मेरी ओर निगाह उठाकर भी नहीं देखते। मैं जानती हूं, आपकी रानी बहुत सुंदर और पतिव्रता थीं। मैं उनकी तरह तो नहीं हूं, पर मैं आपका दुःख बांटना चाहती हूं।"

"मैंने अपनी रानी को वचन दिया था कि..." राजा की बात पूरी होने से पहले ही वह स्त्री बोली — "मैं जानती हूं। मैं आपके बच्चों के आराम के लिए आपसे विवाह करना चाहती हूं। इससे आपके मन की निराशा भी दूर होगी और बच्चों को मां का प्यार मिल जाएगा।"

"आपका नाम क्या है?" — राजा ने पूछा।

"स्वप्नगंधा।" — स्त्री ने नम्र स्वर में कहा।

राजा उस स्त्री की बातों में आ गए। उसे अपने साथ महल में ले आए। राजा के महल में आते ही राजकुमार-राजकुमारी दौड़े हुए आए और पिता ने उन्हें गले लगा लिया। फिर उनसे बातें करने लगे। उसी समय राजकुमारी सुकन्या की दृष्टि कुछ ही दूर पर खड़ी एक सुंदर स्त्री पर गई। सुकन्या के पूछने से पहले ही राजा बोल पड़े — "सुकन्या, हम आज तुम्हारे लिए



नई मां लाए हैं। इन्हें प्रणाम करो।''

दोनों बच्चों ने पिता के आदेशानुसार प्रणाम किया। ''तुम दोनों भाई-बहन इन्हें अपनी मां के समान ही समझना।'' — राजा ने समझाते हुए कहा।

दोनों बच्चे सीधे, सरल थे। वे नई माता को अपनी माता के समान ही प्यार करने लगे। असल में वह स्त्री एक राक्षसी थी। उसने रानी का रूप बनाकर राजा को ठगा था। वह महल का सुख रानी बनकर भोगना चाहती थी, मगर बच्चों के प्यार से राजा उससे कम ही बातें करते थे, इसीलिए वह दोनों बच्चों को मार डालने के उपाय सोचती रहती। वह ऊपरी मन से बच्चों से मीठी-मीठी बातें करती, जिससे राजा को संदेह न हो।

एक बार राजा को शिकार पर दूर जाना था। वह रानी तथा बच्चों से तीन दिन बाद लौटने को कह गए। राजा के जाने के बाद रानी बनी राक्षसी को अच्छा अवसर मिल गया। उसने एक नौकर को सोने की मोहरों की एक पोटली दी। फिर अपनी योजना उसे बताई — ''कल सुबह सैर के बहाने तुम राजकुमार-राजकुमारी को अपने साथ घने जंगल में ले जाना। वहां विषैले पानी की झील में इन्हें धक्का दे देना। लौटकर शीघ्र आ जाना। बाकी मैं देख लूंगी।''

रानी की योजना सुनकर नौकर कांप गया। डरते हुए बोला — ''क्षमा करें रानी जी! ऐसा भयंकर कार्य मैं नहीं कर सकूंगा।''

रानी आग-बबूला हो गई। नौकर को जान से मरवाने की धमकी दी। मरता क्या न करता! नौकर तैयार हो गया।

अगले दिन सुबह रानी ने सूर्य निकलने से पहले ही प्रीतपाल और सुकन्या को नौकर के साथ सैर करने भेज दिया। नगर की सीमा पर पहुंचकर नौकर ने कहा — ''आज मैं तुम्हें जंगल में एक झील दिखाऊंगा। उसका पानी अमृत जैसा है।''

— ''हमने सुना ही नहीं। हम जरूर देखेंगे।''

''लेकिन उस झील से थोड़ी दूर पहले आंखों पर पट्टी बांधनी होती है। उसका पानी चमकीला और नीला है। उसे देखते ही आंखें खराब हो जाती हैं।'' — नौकर ने कहा।

''ठीक है, पट्टी बांध देना।'' — दोनों भाई-बहन एक साथ बोले। नौकर ने जंगल में पहुंचते ही दोनों की आंखों पर पट्टी बांध दी। तीनों झील के पास पहुंचे।

नौकर मन ही मन घबरा रहा था, पर रानी की आज्ञा माननी थी। वह जैसे ही धक्का देने को हुआ, स्वर्गवासी रानी सुतीक्ष्णा की आत्मा प्रकट हुई। बोली — ''उस राक्षसी के कहने से इतना बड़ा अनर्थ करने जा रहे हो तुम। क्या तुम मुझे भूल गए?''

''रानी जी, मुझे क्षमा कर दो। अब आप राजकुमार-राजकुमारी की रक्षा करो। मैं यहां से बहुत दूर चला जाऊंगा। मुझे नई रानी से बहुत डर लग रहा है।'' — कहकर नौकर वहां से भाग गया। रानी सुतीक्ष्णा ने बच्चों की पट्टी खोली। बच्चे मां को देखकर बहुत खुश हुए। थक गए थे, मां की गोद में सिर रखकर सो गए।

आंखें खुली, तो उन्होंने अपने को एक निर्जन स्थान पर पाया। वहां मां नहीं थी। राजकुमार प्रीतपाल समझ गया कि मां उन दोनों को यहां छोड़ गई है। सुकन्या को जोर की प्यास लगी थी।

—''मुझे बहुत प्यास लगी है भैया!''

''तू यहीं ठहर! मैं कहीं न कहीं से पानी लेकर आऊंगा।'' — सुकन्या के मना करने पर भी प्रीतपाल चला गया। सुकन्या एक पेड़ के पास खड़ी हो गई, तभी बहुत तेज हवा चलने लगी। हवा जोरदार आंधी में बदल गई। पेड़ उखड़ने लगे। सुकन्या 'भैया-भैया' चीखी। जब आंधी शांत हुई, तो प्रीतपाल ने अपने को एक वृद्ध दम्पति के पास पाया। बूढ़ा-बुढ़िया उसकी सेवा में लगे थे। उनका कोई बच्चा नहीं था। प्रीतपाल को नदी किनारे से बेहोशी में उठाकर लाए थे। प्रीतपाल समझ गया, आंधी में सुकन्या बिछड़ गई है। पता नहीं, आंधी उसे कहां उड़ाकर ले गई होगी? वह इसी सोच में डूबा रहता। उसे बहन की बहुत याद आती थी।

जहां वृद्ध दम्पति रहते थे, उस नगर का राजा निस्संतान मर गया था। राजा का एक तोता था। राजा उसे बहुत प्यार करता था। तोता बहुत समझदार था। राज कर्मचारियों ने तय किया कि नगर के सभी किशोरों को बुलाया जाए। तोता जिसके गले में फूलों की माला डाल देगा, वही राज सिंहासन पर बैठेगा।

नगर में मुनादी करा दी गई। बुढ़िया भी प्रीतपाल को नए कपड़े पहनाकर ले गई। लेकिन डर के मारे राजदरबार के बाहर एक पेड़ के नीचे उसे खड़ा कर दिया। धनी-मानी व्यक्तियों के लड़कों से राजदरबार भरा था। नियत समय पर तोते को माला दे दी गई। तोता माला लेकर उड़ गया। पेड़ के नीचे खड़े प्रीतपाल को माला पहना दी। सभी आश्चर्यचकित थे। प्रीतपाल को आदर के साथ राज सिंहासन पर बैठा दिया गया।

उधर शिकार से लौटकर आने के बाद राजकुमारी और राजकुमार को न पाकर राजा बहुत दुखी हुए। रानी ने उनसे कहा — "नौकर के साथ सैर पर गए थे — न नौकर लौटा, न दोनों बालक।" रानी नौकर के न लौटने से चिंतित तो थी, पर जब आठ दस दिन तक भी नौकर न लौटा, तो रानी ने सोचा किसी जंगली जानवर ने उसे मार दिया होगा। राजा ने जगह-जगह अपने बालकों को ढुंढ़वाया। कहीं नहीं मिले। राजा दुखी रहने लगे।

सिंहासन पर बैठने के बाद प्रीतपाल अपनी बहन को न भूला। उसने सुकन्या को ढूंढ़ने का प्रयास किया, वह नहीं मिली। सुकन्या भी दर-दर भटकती अपने भाई को ढूंढ़ती फिर रही थी। कभी-कभी उसकी याद में गाना भी गाने लगती थी। घूमते-घूमते सुकन्या एक दिन प्रीतपाल के नगर में आ पहुंची। इकतारा पर गाना गाती राजमहल के पास से गुजरी। प्रीतपाल अपनी बहन की आवाज पहचान गया। उसने दरबान से गीत गाने वाली को राजमहल में लाने को कहा। दरबान ने हुक्म का पालन किया। भाई-बहन एक दूसरे को पहचान गए। दोनों लपककर गले मिले। खुशी के मारे आंखों में आसू आ गए।

सुकन्या आराम से अपने युवराज भाई के साथ राजमहल में रहने लगी। एक दिन प्रीतपाल ने सुकन्या से कहा — "पिता जी से मिलने की बहुत इच्छा है। चलो, मिलकर आएंगे।"

दोनों भाई-बहन पिता के पास पहुंचे। राजकुमार और राजकुमारी को जीवित देखकर राजा भौंचक्के रह गए। मगर राक्षसी बनी रानी के होश उड़ गए। वह बहाना बनाकर अंदर कमरे में चली गई। राजा ने दोनों से पूछा — "इतने दिनों तक तुम कहां रहे?" राजकुमार तो बीती बातों को भूल जाना चाहता था, लेकिन राजकुमारी ने सारी बातें विस्तार के साथ बता दीं।

रानी की करतूत का पता चलने पर राजा आग-बबूला हो उठे। वह तुरंत क्रोध में उफनते हुए रानी के कमरे की ओर गये, किंतु वहां रानी नहीं थी। राजा उसे महल में ढूंढ़ने लगा। तभी उसे अट्टहास सुनाई दिया। फिर उसने देखा, सामने एक भयंकर आकृति वाली स्त्री आ रही है। वह बोली — "राजा, मैं तेरी रानी बनी हुई थी, क्योंकि मैं राजमहल का सुख भोगना चाहती थी। लेकिन मेरा असली रूप यही है। तुम असलियत जान गए हो, तो अब मैं तुम्हें और तुम्हारे बच्चों को जिंदा नहीं छोडूंगी" इतना कह, वह बड़े नाखूनों वाले हाथ उठाकर राजा की ओर झपटी। राजकुमार सावधान था। वह और उसकी बहन कुछ दूर खड़े यह देख रहे थे। उसने अपने तरकश से विष बुझा बाण निकाला और निशाना साधकर राक्षसी के गले को बींध दिया। वह चीत्कार करती गिर पड़ी।

राजा ने अपने बहादुर बेटे को गले से लगा लिया। कुछ दिन बाद राजकुमार दोनों राज्यों के सिंहासन का अधिकारी बन गया। राजा तो ज्यादा दिन जीवित न रहे, किंतु राजकुमार ने राजा बनने पर अपनी बहन का विवाह एक बलशाली और स्वामिभक्त सेवक के साथ किया और फिर उसे अपना पहले वाला राज्य सौंप दिया। भाई-बहन सुख पूर्वक रहने लगे। ●

— कथा मंजरी

गणेश, भगवान शंकर के पुत्र थे। शरीर से छोटे और मोटे। स्वभाव से हंसमुख, चंचल और नटखट। दूसरों को परेशान करने में उन्हें खूब मजा आता था। गणेश भोजन भट्ट थे। उनकी भोजन की थाली में नाना प्रकार के व्यंजन होते थे।

धन के देवता कुबेर तीनों लोक में सबसे अधिक धनवान थे। उन्हें इसका बड़ा अभिमान था। उनके मन में रहता था कि तीनों लोकों के लोग जानें, वही सबसे अधिक धनी हैं। उन्होंने अपनी प्रसिद्धि के लिए विशाल मंदिर और भव्य राजमहल बनवाए थे।

कुबेर भगवान शंकर के परम भक्त थे। एक दिन उन्होंने सोचा — 'क्यों न, भगवान शंकर को सपरिवार भोजन पर बुलाया जाए।' एक दिन वह कैलाश पर्वत पर भगवान शंकर के पास पहुंच गए। स्तुति करके शंकरजी से कहा — "महाप्रभो, आपका दिया मेरे

खाना लाओ

— डा. सत्येंद्र वर्मा

पास सब कुछ है। आपके आशीर्वाद से ही मैं आज तीनों लोकोंमें सबसे अधिक धनी हूं। मैं सदा समान रूप से धनी-निर्धन की सहायता करता हूं। सभी मुझसे प्रसन्न हैं, मेरा गुणगान करते हैं।"

भगवान शंकर ने कहा — "यह तो मुझे मालूम है। बताओ, तुम्हारा आना कैसे हुआ ?"

कुबेर ने प्रसन्न होकर कहा — "हे आदिदेव, मैं आपको अपने यहां सपरिवार भोजन पर निमंत्रित करने आया हूं। कृपया मेरा निमंत्रण स्वीकार करें।

भगवान शंकर ने मुसकराकर कुबेर से कहा — "वत्स, मैं तो कहीं आता-जाता नहीं।"

कुबेर ने कहा — "प्रभो, आप सर्वेश्वर हैं। आपको निमंत्रित करने के लिए ही मैं इतनी दूर से आया हूं। यदि आप न आ सकें, तो माता पार्वती और बच्चों को ही मेरे यहां आने की अनुमति प्रदान करें।"

शंकर फिर हंसते हुए बोले — "देवी पार्वती मेरे बिना कहीं नहीं जातीं। बच्चे भी मां के बिना कैसे जाएंगे। पर तुम्हारा इतना ही आग्रह है, तो मैं गणेश को भेज दूंगा।"

भोजन का दिन निश्चित करके कुबेर लौट गए।

कुबेर भोज की तैयारी में लग गए। वह चाहते थे कि अतिथि खूब छककर भोजन करें। याद रखें कि कहीं दावत खाई थी। भोज के लिए नया रसोईघर और नया भोजन कक्ष बनवाया गया। सोने-चांदी के नए बरतन मंगवाए गए।

कुबेर ने तीनों लोकों के देवी-देवताओं को सपरिवार निमंत्रित किया, ताकि उनकी सम्पन्नता का ढिंढोरा चारों तरफ पिट जाए।

भोज का दिन आ गया। धीरे-धीरे अतिथि आने लगे। कुबेर अतिथियों का स्वागत करते जा रहे थे, किंतु उनका ध्यान गणेश पर लगा हुआ था। तभी गणेश आ पहुंचे। बोले — "भोजन कहां है? मुझे भूख लगी है।"

कुबेर प्रसन्नता पूर्वक गणेश को भोजन कक्ष में ले गए। भोजन कक्ष खूब सुसज्जित था। द्वार पर बंदनवार लगे थे। सुंगध से कक्ष महक रहा था। गणेश ने लपककर अपना आसन ग्रहण किया। सोने की थालियों में अनगिनत प्रकार के भोजन लाए गए।

गणेश चटाई पर आलथी-पालथी लगाकर बैठ गए। बैठने के साथ ही एक सांस में थाली की सामग्री चट कर गए। फिर से उसी तरह की दूसरी थाली सजकर आ गई, उसे भी चट कर गए। फिर थाली आई, फिर चट। थाली पर थाली आती गई, गणपति उसे चट करते गए। भोजन आने में जरा भी देर लगती, तो वह क्रोधित हो उठते। अब तो कुबेर के पसीने छूटने लगे। सोचने लगे — 'यह क्या होता जा रहा है ?' सभी अतिथि आश्चर्य से आंखें फाड़-फाड़कर गणेश की ओर देख रहे थे। गणेश खाते जा रहे थे। किंतु उनकी भूख ज्यों की त्यों बनी थी। थोड़ी ही देर में गणेश सारा तैयार भोजन सफाचट कर गए। कुबेर ने तुरंत पुनः भोजन बनवाने की आज्ञा दी। इसी बीच गणेश उठकर खड़े हो गए और क्रोध में बोले —



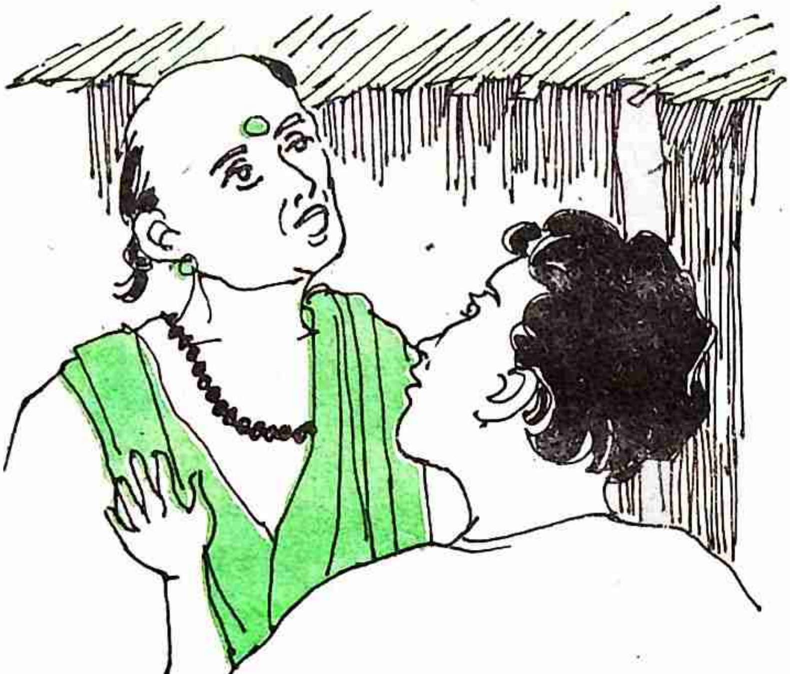
"मुझे भूख लगी है। कहां है भोजन ?"

कुबेर ने प्रार्थना के स्वर में कहा, "प्रभु, भोजन तैयार हो रहा है।" गणेश को विलंब असह्य था। वह तुरंत रसोईघर में पहुंच गए और वहां उन्हें कच्चा-पक्का जो भी मिला, सभी कुछ डकार गए। जब इस पर भी भूख नहीं मिटी, तो भंडार घर में पहुंचे। वहां भी रखी हुई चीजें हड़प गए। इस पर भी तृप्ति नहीं हुई, तब कुबेर से बोले — "मेरे खाने के लिए कुछ शीघ्र मंगाओ।"

कुबेर मौन खड़े रहे। अब गणेश राजमहल की ओर भागे। राजमहल में जो कुछ भी खाने की सामग्री रखी थी, उसे भी अपने पेट में समा लिया। फिर उन्होंने कुबेर से कहा — "मेरा पेट तो अब तक भरा नहीं। क्या मैं तुम्हें अपना भोजन बनाऊं ?" कुबेर भयभीत होकर कांपने लगे। अपनी रक्षा के लिए भगवान शंकर के पास भागे। गणेश भी उनके पीछे-पीछे चले। कुबेर ने शंकर से अपनी रक्षा की याचना की। उनके चरणों में लोट गए। शंकर जी ने पूछा — "क्या बात है कुबेर ?"

गणेश बीच में ही बोल पड़े — "कुबेर ने मुझे भोजन पर बुलाया था, किंतु भरपेट भोजन नहीं कराया।" इस पर शंकर ने गणेश से कहा — "तुम अपनी मां से मांगकर भोजन कर लो।" गणेश घर के अंदर चले गए। कुबेर का अभिमान चूर हो गया था। ●

— गणेश पुराण



यमराज का लेखा

— राधेश्याम प्रगल्भ

प्राचीन काल की बात है। किसी नगर में एक ब्राह्मण रहता था। छोटा-सा परिवार-पत्नी और दो बच्चे।

होनी बलवान होती है। नगर में महामारी फैली। ब्राह्मण की पत्नी और बच्चे परलोक सिधार गए। कुछ दिन बाद बाढ़ आई, तो ब्राह्मण की मड़ैया बह गई। बेचारे का घर-परिवार सब नष्ट हो गया। उसे जीवन से वैराग्य हो गया।

उसने नगर छोड़ दिया और वन में चला गया। वहां उसने शिव की तपस्या की। समय बीतता रहा। ब्राह्मण तप में लगा रहा।

आखिर शिव प्रसन्न हुए। प्रकट होकर बोले— "वर मांगो।" ब्राह्मण क्या मांगे। उसे कुछ न सूझा। थोड़ी देर बाद बोला— "मेरा परिवार समाप्त हो गया। घर मटियामेट हो गया। मैंने कभी सोचा भी न था कि ऐसा होगा। भगवान, मुझे भविष्य दृष्टि दीजिए। मैं चाहता हूं, मुझे भविष्य की घटनाएं साफ दिखाई देने लगें। मैं लोगों को आने वाले संकट से सचेत कर सकूं।"

शिव ने कहा— "ऐसा ही होगा।" और अंतर्धान हो गए।

ब्राह्मण भविष्य द्रष्टा बन गया। उसने जंगल में कुटी बना ली। लोग वहां आने लगे। वह लोगों को भावी घटनाओं के बारे में बताने लगा। धीरे-धीरे उसकी ख्याति फैलने लगी। अब तो उसकी कुटी पर हर समय लोगों का जमघट रहता।

एक दिन ब्राह्मण ने लोगों से कहा— "कल रात नगर में भूकम्प आएगा। भयंकर भूचाल।" जो लोग समय से पूर्व नगर से बाहर आ गए, वे बच गए। जो अपने घरों में रहे, मर गए। बड़ी तबाही हुई।

इस घटना के बाद ब्राह्मण की तो पूजा होने लगी। उस नगर के ही नहीं, दूर-दूर के लोग भी भविष्य पूछने उसके पास आने लगे। पर ब्राह्मण किसी को कुछ न बताता। उसका कहना था— "मैं वही भविष्य-वाणियां करूंगा, जो समाज के हित में होंगी। न कोई लोभ है, न लालच। इसलिए किसी व्यक्ति के बारे में कुछ न बताऊंगा।"

बहुत से लोग ब्राह्मण के पास कुछ सीखने के इरादे से आए। वे ब्राह्मण के शिष्य बनकर भविष्य दर्शन की कला सीखना चाहते थे। पर ब्राह्मण ने किसी को भी शिष्य बनाना स्वीकार न किया।

एक दिन नौ-दस बरस का एक बालक उसकी कुटिया पर आया। नाम था रामू। ब्राह्मण के चरणों पर लोट गया और रोने लगा। ब्राह्मण के पैर उसके आंसुओं से भीग गए। उसका मन द्रवित हो उठा। बोला— "बालक उठो, बताओ तुम्हें क्या कष्ट है ?"

बालक रोते हुए बोला— "पहले वचन दीजिए कि आप मुझे अपना चेला बनाएंगे।"

ब्राह्मण को बालक होनहार लगा। उसने सोचा— 'मेरा वंश तो चल नहीं पाया। क्यों न शिष्य परम्परा ही चले।' ऐसा सोच कर उसने बालक को वचन दे दिया— "रामूं ! मैं तुझे अपना शिष्य बनाना स्वीकार करता हूं।" सुनते ही रामू खुशी से उछल पड़ा। झटपट आंसू पोंछ डाले। हाथ जोड़कर गुरू के सामने खड़ा हो गया।

सहसा ब्राह्मण को जैसे काठ मार गया। सोचने

लगा— 'मैं भी कैसा आदमी हूं। इसका भविष्य देखे बिना ही मैंने वचन दे दिया।' यह सोच उसने नयन मूंदे और ध्यान में डूब गया। जब कुछ देर बाद नेत्र खोले तो बोला— "नहीं, नहीं, मैं तुझे शिष्य नहीं बना सकता।"

—"लेकिन, क्यों ? अभी तो आपने वचन दिया था।"

—"मैंने अभी-अभी तुम्हारा भविष्य देखा है। तुम्हारी आयु बस केवल एक सप्ताह और है। अब तुम्हीं बताओ, क्या करूंगा तुम्हें शिष्य बनाकर ?"

रामू बोला— "एक सप्ताह तो बहुत होता है गुरु जी ! भले ही मैं एक दिन ही जीवित रहूं, पर मुझे अपना शिष्य अवश्य बना लीजिए।"

बालक ने अपनी बात कुछ इस ढंग से कही कि गुरू जी पर प्रभाव पड़ा। ब्राह्मण सोचने लगा— 'क्या विधाता केवल मुझसे ही कुपित है। एक बालक को शिष्य बनाना चाहा, उसे भी वह छीन रहा है। मैं शिव का भक्त हूं। क्यों न शिव से इसकी आयु बढ़ाने की प्रार्थना करूं।' ऐसा सोच कर उस बालक से कहा— "ठीक है, मैं तुम्हें अपना शिष्य बनाता हूं। और सुनो, मैं इसी समय से शिव की आराधना आरम्भ करूंगा। देखना, मेरी तपस्या में किसी प्रकार का विघ्न न हो।"

"जो आज्ञा, गुरुदेव !"— रामू ने नम्रता से कहा।

ब्राह्मण ने समाधि लगा ली। तपस्या करते हुए छह दिन बीत गए। आखिर शिव प्रकट हुए। बोले— "अब क्या कष्ट है ?"

ब्राह्मण ने भगवान शिव के सामने समस्या रखी। फिर प्रार्थना की— "हे देव ! मैं चाहता हूं कि इस बालक की उम्र बढ़ जाए। इसका जीवन अब केवल एक दिन का और है।"

शिव ने कहा— "मुझे तुमसे तथा इस बालक से सहानुभूति है। पर किसी का भाग्य बदलने का काम मैं नहीं कर सकता। यह काम तो ब्रह्माजी ही कर सकते हैं।"

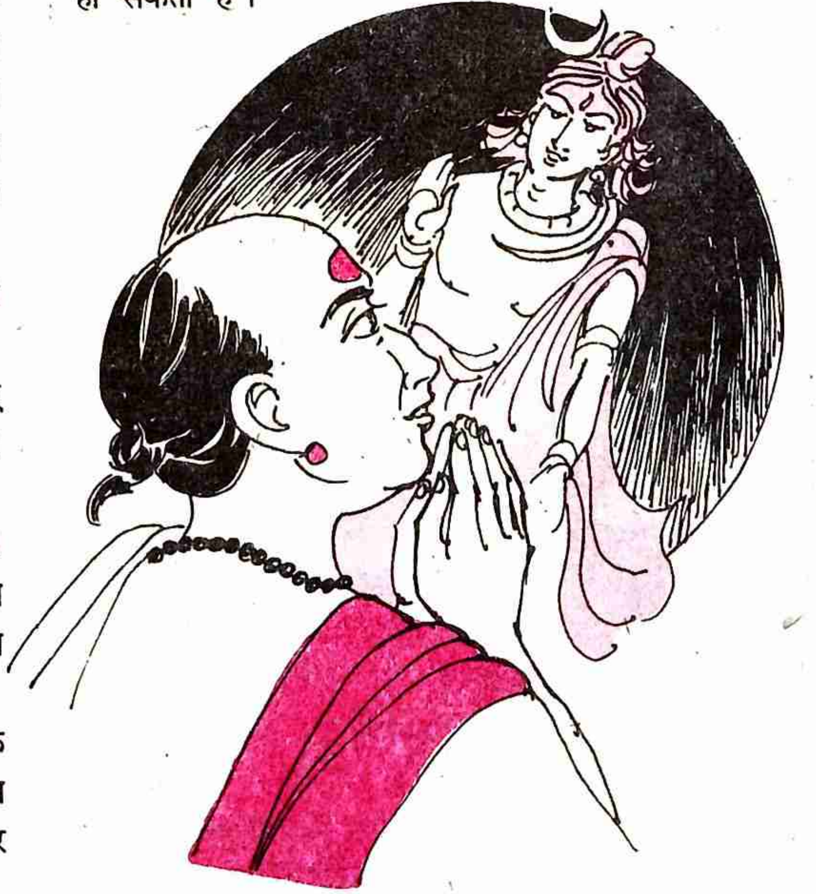
ब्राह्मण ने फिर प्रार्थना की— "कुछ तो कीजिए, देव ! इस बालक की आयु और बढ़ा दीजिए।"

शिव कुछ देर चुप रहे। फिर बोले— 'तुम मेरे भक्त हो। इसीलिए, चलो, ब्रह्माजी के पास चलते हैं। उनसे आग्रह करेंगे कि इस बालक की और आयु दें।"

शिव और ब्राह्मण रामू के साथ ब्रह्माजी के पास पहुंचे। ब्रह्माजी ने भगवान शिव का स्वागत किया— "पधारें देव। कहिए, कैसे कष्ट किया ?"

शिव ने सारी बात ब्रह्माजी को बता दी। फिर बोले—"ब्रह्माजी, आप ही सबका भाग्य लिखते हैं। कृपया इस बालक की उम्र बढ़ा दीजिए। इसका जीवन अब मुश्किल से एक घंटे का है।"

—"कैलाशपति ! ठीक है कि इस बालक का भाग्य मैंने ही लिखा है, पर भाग्य लिखने के बाद मैं सारा विवरण भगवान विष्णु के पास भेज देता हूं। मैं कुछ नहीं कर सकता। अब तो विष्णु चाहें, तभी कुछ हो सकता है।"





"तब ?"— शिव ने पूछा ।

—"चलिए, मैं भी आपके साथ चलता हूं । हम सब भगवान विष्णु से प्रार्थना करेंगे । शायद मान जाएं ।"

—"शीघ्रता कीजिए, देव ! बालक की मृत्यु में बहुत कम समय बाकी रह गया है ।"

ब्रह्मा और शिव अपने साथ गुरु और शिष्य को लेकर पवन वेग से विष्णु लोक में जा पहुंचे । भगवान विष्णु शेष शय्या पर शयन कर रहे थे । उन्होंने स्वयं उनका स्वागत किया । आने का कारण पूछा । ब्रह्माजी ने कहा— "शिवजी चाहते हैं कि इनके भक्त के शिष्य रामू की आयु बढ़ जाए । इसका जीवन बस समाप्त होने ही वाला है ।"

"भगवन ! कृपया इसे जीवनदान दें ।"— ब्राह्मण ने कहा ।

विष्णु बोले— "मैं शिवजी और ब्रह्माजी की बात कभी नहीं टालता, ब्राह्मण देवता ! किंतु एक कठिनाई है । जो भी विवरण ब्रह्माजी मेरे पास भेजते हैं, मैं उन्हें अपने पास नहीं रोकता । कार्यवाही के लिए तत्काल यमराज को भेज देता हूं । अब तो वही कुछ कर सकते हैं । बालक की मृत्यु की घड़ी निकट है । इसलिए चलो, जल्दी चलो । यमराज को रोकें कि इस बालक के प्राण न लें ।"

और सबको लेकर विष्णु तेजी से यमलोक जा पहुंचे । बालक की मृत्यु की घड़ी बहुत निकट देख, विष्णु ने द्वार से ही पुकारा— 'हे यमराज ! हम तीनों देव चाहते हैं कि रामू नामक इस बालक की मृत्यु न हो । इसी हेतु हम यहां आए हैं । "अभी विष्णु इतना ही कह पाए थे कि अचानक एक शिला बालक के ऊपर आ गिरी और उसकी मृत्यु हो गई । यह देख, विष्णु यमराज से बोले— "कैसे हो तुम ! हमारे आने का भी ख्याल नहीं किया ! बालक के प्राण ले लिए । तुमने बड़ा अनर्थ किया है, यमराज !"

"और हम सबका अपमान भी ।" शिव बोले । शिव तांडव करने को आकुल हो उठे । ब्राह्मण भी क्रोध से आग-बबूला हो उठा । ब्रह्माजी ने उन्हें रोका । यमराज हाथ जोड़कर बोले— "हे त्रिदेव ! आप मुझ पर क्रोध न करें । तनिक इस बालक के भाग्य को पढ़िए । देखिए, इसकी भाग्य लिपि क्या है ।" इतना कहकर यमराज ने शिला के नीचे से एक कागज निकाला और विष्णु को दे दिया । उस पर उस बालक का भाग्य लिखा था । विष्णु ने भाग्य लिपि पढ़ी । फिर चुपचाप वह कागज ब्राह्मण को थमा दिया—"इसे पढ़िए ।"

ब्राह्मण ने पढ़ा । लिखा था— 'ब्राह्मण का शिष्य रामू कभी नहीं मर सकता । इसकी मृत्यु तभी होगी, जब यह सदेह यमराज के दरबार में आए और उस समय इसके गुरू तथा ब्राह्मण, विष्णु, महेश तीनों देव भी वहां हों । केवल उसी स्थिति में इसकी मृत्यु होगी । अन्यथा कदापि नहीं ।'

ब्राह्मण ने बालक का भाग्य पढ़कर अपना सिर पकड़ लिया । बड़बड़ाया— "मैं ही अपने शिष्य की मृत्यु का कारण बना ।" ● — **शतरुद्र संहिता**

घर लौट जा

— विजय राघव

प्राचीन काल में हरिकेश नाम का एक यक्ष था । वह बड़ा परोपकारी, दयालु और ईमानदार था । उसके पिता पूर्णभद्र ने उसे समझाया— "तुम मनुष्य जाति से भिन्न हो, इसलिए तुम्हारा जीवन मनुष्यों जैसा नहीं होना चाहिए । तुम्हें मनुष्यों के साथ मित्रता नहीं रखनी चाहिए ।"

पिता के बार-बार समझाने पर हरिकेश न माना । खिन्न होकर पिता ने उसे घर से निकाल दिया । घर से वह अपनी सम्बंधियों के पास गया, मगर किसी ने भी उससे बात न की ।

पिता एवं यक्ष जाति से अपमानित हो, वह भगवान शंकर की आराधना करने लगा । तपस्या करते-करते अनेक वर्ष बीत गए । यक्ष का शरीर दुबला हो गया ।

एक दिन भगवान शंकर एवं पार्वती उधर से घूमते हुए जा रहे थे । पार्वती ने तपस्या करते यक्ष को देखा । वह भगवान शंकर से बोलीं— "आप बहुत निष्ठुर हैं । यह यक्ष कितने समय से आपकी आराधना कर रहा है । आपने अभी तक इसकी मनोकामना पूरी नहीं की ।"

भगवान शंकर ने उत्तर दिया— "देवी, मैं इसकी तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं पर इसकी कामना पूरी कैसे करूं । इसने अपने पिता की बात नहीं मानी । उनकी सेवा भी नहीं की है । मेरा वरदान तो उन्हीं लोगों के लिए फलदायी होता है, जो अपने माता-पिता की सेवा के साथ मेरी उपासना करते हैं ।"

पार्वती बोलीं— "महाराज, जैसे भी हो, इसका उद्धार कीजिए । अन्यथा यह यक्ष शरीर त्याग देगा ।"

"ठीक है, मैं कोई उपाय करता हूं ।"— शंकर भगवान ने उत्तर दिया । वे दोनों यक्ष के पास पहुंचे । पार्वती-शिव को सामने देख, यक्ष उनके चरणों में लोट गया । शंकर प्रसन्न होकर बोले— "वत्स, हम तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हैं । तुम फिर से स्वस्थ एवं सुंदर बन जाओ ।"

कहते ही तपस्या से निर्बल यक्ष का शरीर सुंदर एवं स्वस्थ हो गया ।

भगवान शंकर ने कहा— "यक्ष, तुम अपने घर जाओ । सेवा से अपने माता-पिता को प्रसन्न करो । मैं तुम्हें यह अक्षय पात्र दे रहा हूं । इस पात्र से तुम्हारी सारी मनोकामनाएं पूर्ण हो सकती हैं । लेकिन यह पात्र उसी समय कारगर होगा, जब तुम्हारे माता-पिता तुमसे प्रसन्न हो जाएंगे ।" इतना कहकर शिव-पार्वती चले गए ।

यक्ष अक्षय पात्र लेकर घर पहुंचा । उसने माता-पिता से क्षमा मांगी, फिर उनकी सेवा करने लगा ।

धीरे-धीरे सच्चे मन से सेवा करते, हरिकेश ने अपने माता-पिता का दिल जीत लिया । प्रसन्न मन से उसके पिता पूर्णभद्र ने अपने बेटे से कहा— "वत्स, हम तुम्हारी सेवा से बहुत प्रसन्न हैं । मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है ।" हरिकेश मारे खुशी से नाच उठा । अब उसने पिता को अक्षय पात्र के बारे में सब कुछ बता दिया ।

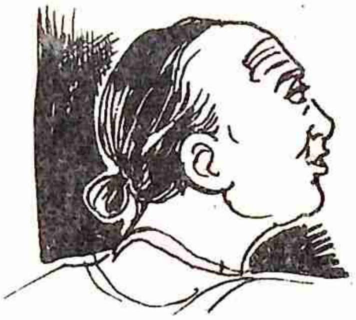
पिता बोले— "बेटे, मुझे जोरों से भूख लग रही है । तुरंत अक्षय पात्र से बढ़िया-बढ़िया पकवान मेरे लिए मंगवाओ ।"

हरिकेश ने विनम्रता से उत्तर दिया— "पिता जी, सबसे पहले मैं इस पात्र के पकवानों से दीन-दुखियों की भूख मिटाना चाहता हूं । भगवान शंकर ने यही बताया कि दूसरों को सुख पहुंचाना, सबसे बड़ा पुण्य है ।"

पुत्र की बात सुन, पिता की आंखें खुशी से चमक उठीं । बोले— "वत्स, आज मुझे पता लग गया कि सचमुच ही तपस्या ने तुम्हारा मन निर्मल बना दिया है ।"

अब यक्ष ने भगवान शंकर का ध्यान कर, अक्षय पात्र से स्वादिष्ट व्यंजन मांगे । तुरंत पकवान निकलने लगे । यक्ष ने गरीबों को बुलाकर भोजन कराया । जितना खिलाओ, वह खाली होता ही नहीं था, इसीलिए उसका नाम अक्षय पात्र था । यक्ष लोगों की भलाई में जुट गया । ●

— मत्स्य पुराण



आए भगवान

—टी. पक्षिराजन

एक बार महाराज जनमेजय कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गए। उन्होंने बहुत इलाज कराया। राजवैद्य के साथ-साथ राज्य के अन्य चिकित्सक भी कोशिश करके हार गए, लेकिन रोग बढ़ता ही जा रहा था।

एक बार जनमेजय दुखी और अनमने-से महल में बैठे थे। पास ही राजवैद्य भी था। जनमेजय बोले—"लगता है, यह रोग औषधि से दूर होने वाला नहीं। अब तो जीवन भर इससे पीछा छूटना कठिन है।"

सुनकर राजवैद्य का सिर झुक गया। बोला—"क्षमा करें महाराज ! अब तो एक ही उपाय है। आप दक्षिण में गुरुवायूर के मंदिर में जाकर उपासना करें।"

तुरंत जनमेजय चल पड़े। गुरुवायूर के मंदिर में जाकर उन्होंने बहुत दिनों तक तप किया। एक रात उन्हें लगा, कोई अलौकिक पुरुष सामने है। वह हौले-हौले उनके पूरे शरीर पर हाथ फेर रहा है। उन्हें ठंडक-सी महसूस हुई। जैसे शरीर का सारा कष्ट दूर हो गया। मन ही मन गुरुवायूर का स्मरण करते हुए, वह अपने राज्य लौट गए।

गुरुवायूर की यह कीर्ति कथा नारायण भट्टतिरि ने भी सुनी थी। वह संस्कृत के प्रकांड विद्वान और शास्त्रों के ज्ञाता थे। एक बार इनके गुरु को वात रोग ने जकड़ लिया। वह पीड़ा से छटपटाने लगे। नारायण से गुरु का यह कष्ट न देखा गया। उन्होंने प्रार्थना की—"हे प्रभु, अगर मेरी भक्ति में कोई खोट नहीं है, तो यह वरदान दीजिए कि मेरे गुरु जी स्वस्थ हो जाएं। उनका रोग मुझमें आ जाए।"

और सचमुच, ऐसा ही हुआ ! गुरुजी एकदम स्वस्थ हो गए। उनकी जगह नारायण को वात रोग ने घेर लिया। वह दर्द से छटपटाने लगे। किसी औषधि से लाभ नहीं हुआ, तो उन्होंने गुरुवायूरप्पन जाकर गुरुवायूर की पूजा करने का निश्चय किया। वहां जाकर नारायण ने गुरुवायूर की स्तुति में काव्य रचा। एक से एक सुंदर श्लोक लिखे, जिनमें गुरुवायूर की पावन महिमा का वर्णन था। जैसे-जैसे श्लोक लिखे जाते, दर्द कम होता जाता। एक हजार श्लोकों का ग्रंथ पूरा होते ही नारायण का रोग एकदम ठीक हो गया। उन्होंने उस ग्रंथ का नाम रखा — 'नारायणीयम्'। स्वयं गुरुवायूर ने ग्रंथ पूरा होने पर प्रसन्नता से सिर हिलाकर उन्हें आशीर्वाद दिया।

अब तो नारायण भट्टतिरि के ग्रंथ नारायणीयम् की घर-घर चर्चा होने लगी। दूर-दूर से लोग उनके दर्शन के लिए आते। उनके बारे में कहा जाता है—'नारायण भट्टतिरि से बढ़कर गुरुवायूर का कोई और शिष्य नहीं। गुरुवायूर ने स्वयं अपनी प्रेरणा से नारायणीयम् की रचना करवाई है।'

गुरुवायूर का एक और शिष्य था—पूंतानम। वह सीधा-सादा था, ज्यादा पढ़ा-लिखा न था। उसने मलयालम में कविताएं लिखी थीं। एक बार उसने गुरुवायूर पर कुछ पद लिखे। उन्हें लेकर नारायण भट्टतिरि के पास गया।

नारायण भट्टतिरि उस समय विश्राम कर रहे थे। पूंतानम ने जाते ही कहा—"आप महान विद्वान हैं। सब जगह आपकी कीर्ति फैली है। इसीलिए अपना यह काव्य आपको दिखाने लाया हूं। कृपया मेरा मार्ग दर्शन करें।"

सुनकर नारायण ने उपेक्षा से पूंतानम की ओर देखा। उन्हें लगा, यह व्यक्ति तो मामूली पढ़ा-लिखा लगता है। यह भला कैसे काव्य रचना कर सकता है ? उन्होंने पूंतानम से पूछा—"क्या तुम संस्कृत जानते हो ?"

"जी नहीं, मैं तो मामूली पढ़ा-लिखा हूं। संस्कृत नहीं जानता। मैंने मलयालम में काव्य रचना की है।" — पूंतानम ने विनय पूर्वक कहा।

"लेकिन जो संस्कृत नहीं जानता, उसे काव्य रचना करने का क्या अधिकार है ? मूर्ख, तुझे पता नहीं, गुरुवायूर केवल संस्कृत में स्तुति किए जाने पर ही प्रसन्न होते हैं ? उठाओ अपनी पोथी और चले जाओ यहां से !" — नारायण भट्टतिरि क्रोधित होकर बोले ।

पूंतानम का चेहरा फक पड़ गया । उसने लिखे हुए पन्ने उठाए और बाहर चल दिया । वह मुश्किल से आंसुओं को रोक पा रहा था । सोच रहा था—'ओह, मैं ज्ञानी नहीं, विद्वान नहीं । संस्कृत जाने बिना मेरा जीवन व्यर्थ है !'

उसी रात नारायण भट्टतिरि मंदिर से लौटकर अपने ग्रंथ 'नारायणीयम्' का पाठ करने बैठे । अचानक उन्होंने देखा, एक छोटा बच्चा सामने बैठा उनका काव्य सुन रहा है । जैसे ही नारायण ने पहली कविता पढ़ी, बालक ने कहा—"अरे, इसमें तो दोष है । संस्कृत के महान विद्वान होकर भी आपने यह नहीं देखा ?"

सुनकर नारायण सन्न रह गए । वाकई बालक ने जिस दोष की ओर इशारा किया था, उस पर पहले कभी उनका ध्यान गया ही नहीं था ।

नारायण ने दूसरी कविता पढ़ी, तो बालक ने मुसकराते हुए कहा— "अरे, इसमें तो एक नहीं, दो गलतियां हैं । आप कैसे विद्वान हैं ! अपनी ही कविता के दोष नहीं देख पाते ?"

नारायण को सचमुच अपनी गलतियां माननी पड़ीं । उन्होंने हिम्मत करके तीसरी कविता सुनाई । पर इसमें बालक ने एक नहीं, दो नहीं, तीन गलतियां निकाल दीं ।

अब तो नारायण भट्टतिरि पसीने-पसीने हो गए । सारा ज्ञान-अभिमान बह गया । ध्यान से देखा, तो पता चला— सामने वाला बालक साधारण बालक नहीं है । स्वयं गुरुवायूर हैं ।

नारायण उनके चरणों पर गिर पड़े । बालक बने गुरुवायूर बोले— "कविता तो सरल मन से लिखी जाती है । उसके लिए ज्ञानी होना जरूरी नहीं । पूंतानम सरल है, तुम अभिमानी हो । इसीलिए मुझे पूंतानम का काव्य तुमसे अधिक पसंद है ।"

नारायण कुछ और कहते, इससे पहले ही बालक अदृश्य हो गया । नारायण का सारा मैल बह गया । घमंड चूर-चूर हो गया । बड़बड़ाए— 'मुझे क्षमा कर दो पूंतानम ! मुझसे भूल हुई । तुम्हारी महानता नहीं समझ पाया ।' वह स्वयं पूंतानम के पास गए । उससे अपनी कविताएं देने का आग्रह किया ।

जैसे-जैसे नारायण पूंतानम की कविता पढ़ते जाते, उन्हें लगता कि उनके हृदय में नया प्रकाश हो रहा है । पूंतानम की सादगी और सरलता में बड़ी गहराई थी । सच्चे मन की भावना थी । नारायण का सिर आदर से झुक गया ।

उस दिन के बाद जिसने भी सुना, पूंतानम के दर्शन करने दौड़ पड़ा । इतनी सरलता थी उसमें कि देखकर लोग दंग रह जाते । पूंतानम हर दिन गुरुवायूर के दर्शन करने जाते थे । आंधी-पानी में भी उनका यह नियम नहीं टूटता था । जब वह बूढ़े हो गए, तो एक दिन मंदिर जाने के लिए तैयार हुए । इतने कमजोर हो चुके थे कि लगा चक्कर खाकर गिर जाएंगे । तभी देखते क्या हैं, सामने गुरुवायूर स्वयं खड़े हैं । गुरुवायूर ने उनसे कहा— "अब तुम्हें मेरे दर्शन करने के लिए मंदिर आने की जरूरत नहीं । मैं स्वयं तुम्हारे पास आऊंगा ।" और उस दिन से क्रम उलट गया । पूंतानम मंदिर न जाते । स्वयं गुरुवायूर अपने भक्त से मिलने आ जाते । अंत समय में एक पुष्पक विमान पूंतानम के घर के आगे आ खड़ा हुआ । सबके देखते-देखते पूंतानम उसमें बैठ, स्वर्ग चले गए ।

सब चकित थे । सबसे अधिक आश्चर्य मंदिर के पुजारियों को हुआ । सोचने लगे— 'जीवन भर हमने गुरुवायूर की सेवा की । पर स्वर्ग मिला एक मामूली आदमी को ।'

तभी आकाशवाणी हुई — 'मुझे तो वही भक्त प्रिय है, जिनका मन बच्चे की तरह सरल हो । निर्मल हो । पूंतानम निश्छल है, इसीलिए उसने मुझे पा लिया ।" ●

चटपट

- रसोइया — आपके मेहमानों की पसंद की यही सूची है। क्या रोज यही खाना बनेगा ?
  मालिक — नहीं, जब तक वे रहें, इनमें से एक चीज भी नहीं पकेगी।
- मालिक — क्या कहा, इस नौकर को भी चोरी करने की आदत है ?
  मालकिन — हां, वही जो क्रीम हम दुकान से उठाकर लाए थे, इसने चुरा ली।
- एक मित्र — तुम्हें कभी झूठ बोलने की कोई सजा मिली है ?
  दूसरा मित्र — हां, जिस आदमी की रोज मैं झूठी प्रशंसा करता था, उसने मुझे अपने विभाग में बुला लिया।
- ग्राहक — आपको पता है, आपकी दुकान का कपड़ा सबसे अधिक सड़ा-गला होता है ?
  दुकानदार — सड़ा-गला ! किसने कह दिया ! यदि ऐसा हो, तो क्या किसी कपड़े को बारह साल बाद हम बेच सकते हैं ?
- एक मरीज ने डाक्टर की फीस पढ़ी। पहली बार पचास रुपए, दूसरी बार तीस रुपए और तीसरी बार दस रुपए।
  वह अंदर कराहता हुआ गया और बोला — "लीजिए डाक्टर साहब, मैं तीसरी बार फिर आ गया।"
- नरेश — सुना है, कल तुम्हारे यहां डाकू आ गए, मगर तुम्हारे पास तो बंदूक थी।
  सुरेश — हां, यही अच्छा हुआ कि उनकी नजर बंदूक पर नहीं पड़ी।
- टी.टी.ई. — भाई, यह गाड़ी लखनऊ नहीं, कलकत्ता जा रही है।
  यात्री — यह बात तो आप अपने ड्राइवर को बताइए कि वह सही रास्ते चला करे।
- पड़ोसी — तुम्हारी बहन की शादी होने वाली है क्या ?
  बच्चा — मुझे पता नहीं क्या होने वाली है। सब लोग अलग-अलग बातें कर रहे हैं। चाची जी कह रही हैं, उसके हाथ पीले होने वाले हैं। मम्मी कह रही हैं, वह पराई होने वाली है। आप कह रहे हैं — शादी होने वाली है।
- माता-पिता — बड़ों को पार्क से फूल क्यों नहीं तोड़ने चाहिएं ?
  बच्चे — फिर हम क्या तोड़ेंगे !
- बड़ा भाई — मुझे मक्खन लगाता है।
  छोटा भाई — तुम कोई डबलरोटी हो !
- एक व्यक्ति (भागते हुए आदमी से)—पागल कुत्ता किस दिशा में गया है ?
  भागता आदमी—कम से कम मैं उसका पीछा नहीं कर रहा हूं।
- गायिका—मैं गाने में इतनी खो जाती हूं कि मेरे आगे से सारे दर्शक गायब हो जाते हैं।
  आयोजक—और फिर वे हमारी कोशिशों के बावजूद वापस नहीं आते।
- रीता—तुम बहुत भद्दे ढंग से झूठ बोल रही हो।
  गीता—अच्छे ढंग से झूठ बोलना तुम बता दो।



नंदन ज्ञान पहेली

१००० रु. पुरस्कार
कोई शुल्क नहीं

नियम और शर्तें

- पहेली में १७ वर्ष तक के पाठक भाग ले सकते हैं।
- रजिस्ट्री से भेजी गई कोई भी पूर्ति स्वीकार नहीं की जाएगी।
- एक व्यक्ति को एक ही पुरस्कार मिलेगा।
- सर्वशुद्ध हल न आने पर, दो से अधिक गलतियां होने पर, पहेली की पुरस्कार राशि प्रतियोगियों में वितरित करने अथवा न करने का अधिकार सम्पादक को होगा।
- पुरस्कार की राशि गलतियों के अनुपात में प्रतियोगियों में बांट दी जाएगी। इसका निर्णय सम्पादक करेंगे। उनका निर्णय हर स्थिति में मान्य होगा। किसी तरह की शिकायत सम्पादक से ही की जा सकती है।
- किसी भी तरह का कानूनी दावा, कहीं भी दायर नहीं किया जा सकता।
- यहां छपे कूपन को भरकर, डाक द्वारा भेजी गई पहेली ही स्वीकार की जाएगी। भेजने का पता है—
- सम्पादक, 'नंदन' (ज्ञान-पहेली), हिंदुस्तान टाइम्स हाउस, कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली-११०००१
- एक नाम से, पांच से अधिक पूर्तियां स्वीकार नहीं की जाएंगी।

संकेत

ऊपर से नीचे

१. यह— बहुत ही पुरानी है। (प्रथा/कथा)
२. कैसा लगा यह— ? (देश/वेश)
७. आप— जा रहे हैं ? (कहां/कब)

बाएं से दाएं

३. वह— कर खड़ा हो गया। (सट/हट)
४. चोरी के— से उसे चिढ़ थी। (काम/नाम)
५. अब जल्दी से— भी जाओ। (खा/ले)
६. इसे अच्छी तरह— दो। (हिला/मिला)
८. एक राक्षस, जो सिर कटने पर भी नहीं मरा था।
९. उसने सबको अपनी— में डाल लिया। (थैली/झोली)
१०. अब तो — दे, कितनी देर हो गई। (बोल/खोल)
११. उसे मौका मिला तो उसने राक्षस की— काट दी। (पूंछ/मूंछ)
१२. प्राचीन भारत का एक राजा, जिसे लेकर अनेक कथाएं लिखी गई हैं।

आपत्ति न की। राजा ने अपना राजपाट मंत्री को सौंपा और चुपचाप जंगल के एकांत में चले गए।

एक दिन राजा घूमने निकले। नदी तट पर पहुंचे। प्रकृति की सुंदर छटा देख, वह एक जगह बैठ गए। ऊंची-ऊंची पहाड़ों की चोटियां और नीचे बहती नदी, बहुत ही लुभावना दृश्य था। राजा के मन को शांति मिली। वह पहाड़ पर चढ़ने लगे। थोड़ी दूर एक छोटी-सी गुफा थी। गुफा के आसपास फलदार वृक्ष लगे थे। राजा ने सोचा—'यहां पीने के लिए पानी तथा भोजन के लिए फलदार पेड़ हैं। यहां एकांत में रहना और भी अच्छा है।' बस, राजा वहीं रहकर भगवान का भजन करने लगे।

कुछ दिनों तपस्या करते हुए बीते। एक दिन राजा तपस्या में लीन थे। अचानक तेज हवा चलने लगी। जोरदार धमाका हुआ। राजा ने आंखें खोलीं। देखा, एक काली-सी आकृति उनकी ओर बढ़ रही है। राजा चकित हो बोले—"तुम कौन हो ?"

आकृति ने जोर से ठहाका लगाया। सारी घाटी गूंज उठी। धीरे-धीरे वह आकृति पास आकर एक मनुष्य में बदल गई। वह मनुष्य बोला—"राजन, तुम मुझे नहीं जानते, परंतु मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूं।

● ग्राहक — आपको पता है, आपकी दुकान का कपड़ा सबसे अधिक सड़ा-गला होता है ?
दुकानदार — सड़ा-गला ! किसने कह दिया ! यदि ऐसा हो, तो क्या किसी कपड़े को बारह साल बाद हम बेच सकते हैं ?

● एक मरीज ने डाक्टर की फीस पढ़ी । पहली बार पचास रुपए, दूसरी बार तीस रुपए और तीसरी बार दस रुपए ।
वह अंदर कराहता हुआ गया और बोला — "लीजिए डाक्टर साहब, मैं तीसरी बार फिर आ गया ।"

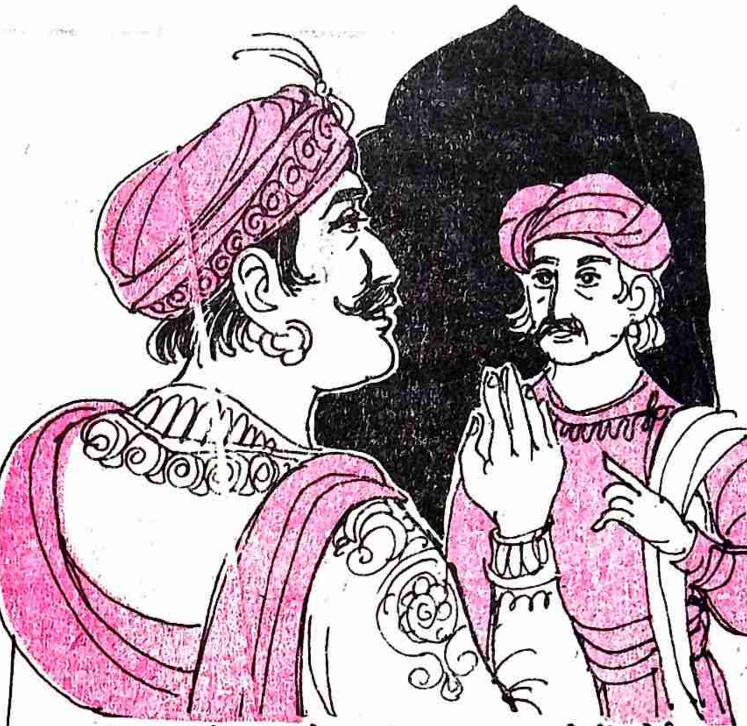
● नरेश — सुना है, कल तुम्हारे यहां डाकू आ गए, मगर तुम्हारे पास तो बंदूक थी ।
सुरेश — हां, यही अच्छा हुआ कि उनकी नजर बंदूक पर नहीं पड़ी ।

● टी.टी.ई. — भाई, यह गाड़ी लखनऊ नहीं, कलकत्ता जा रही है ।
यात्री — यह बात तो आप अपने ड्राइवर को बताइए कि वह सही रास्ते चला करे ।

● पड़ोसी — तुम्हारी बहन की शादी होने वाली है क्या ?

तप करो

—नरेन्द्रकुमार



एक राजा थे। नाम था विशाल। उनकी राजधानी विशाल नगरी थी। राजा विशाल ने कई छोटे-छोटे राज्यों को जीता था। वह प्रजापालक और न्यायप्रिय राजा थे। प्रजा भी उनसे प्रसन्न थी। राजा अधेड़ हो चले थे, किंतु उनके कोई पुत्र न था।

एक दिन उनके राज्य में कहीं से एक तपस्वी पधारे। तपस्वी का अद्‌भुत व्यक्तित्व देख, लोग प्रभावित थे। तपस्वी नगर के बाहर ही रहते थे। किसी से कुछ मांगना नहीं। जो कुछ मिला, खा लिया। दिन-रात भगवान की भक्ति में लीन रहते थे।

तपस्वी की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैलने लगी। एक दिन मंत्री ने राजा से कहा—"महाराज, आप भी तपस्वी के दर्शन कर लें। क्या पता, उन्हीं के आशीर्वाद से राज्य को उत्तराधिकारी मिल जाए।"

मंत्री के कहने पर राजा तपस्वी के पास पहुंचे। राजा ने तपस्वी को प्रणाम किया। तपस्वी ने मुसकरा कर राजा को आशीर्वाद दिया। राजा चुपचाप एक आसन पर बैठ गए।

मंत्री तपस्वी से बोले—"आप जैसे महापुरुषों की कृपा से हमारे महाराजा का यश चारों ओर फैल रहा है। परंतु महाराज को एक चिंता है. . ." तपस्वी ने बीच में टोकते हुए कहा—"राजा की चिंता हम जानते हैं। उनकी समस्या का समाधान कल हो सकेगा।" इतना कहकर तपस्वी चुप हो गए। राजा प्रणाम कर चले गए।

अगले दिन राजा फिर वहां पहुंचे। तपस्वी ने राजा को आदरपूर्वक बैठाया। बोले—"राजन, आपके संतान सुख के अभाव का कारण मैंने जान लिया है। आप कुछ दिन, कहीं दूर एकांत में जाकर भगवान का भजन करो। शायद भगवान् खुश हो जाएं।"

राजा ने कहा—"जैसी आपकी आज्ञा।"

महल में आकर राजा ने रानी को सारी बातें बताईं। रानी ने राजा के एकांत स्थान पर जाने में कोई आपत्ति न की। राजा ने अपना राजपाट मंत्री को सौंपा और चुपचाप जंगल के एकांत में चले गए।

एक दिन राजा घूमने निकले। नदी तट पर पहुंचे। प्रकृति की सुंदर छटा देख, वह एक जगह बैठ गए। ऊंची-ऊंची पहाड़ों की चोटियां और नीचे बहती नदी, बहुत ही लुभावना दृश्य था। राजा के मन को शांति मिली। वह पहाड़ पर चढ़ने लगे। थोड़ी दूर एक छोटी-सी गुफा थी। गुफा के आसपास फलदार वृक्ष लगे थे। राजा ने सोचा—'यहां पीने के लिए पानी तथा भोजन के लिए फलदार पेड़ हैं। यहां एकांत में रहना और भी अच्छा है।' बस, राजा वहीं रहकर भगवान का भजन करने लगे।

कुछ दिनों तपस्या करते हुए बीते। एक दिन राजा तपस्या में लीन थे। अचानक तेज हवा चलने लगी। जोरदार धमाका हुआ। राजा ने आंखें खोलीं। देखा, एक काली-सी आकृति उनकी ओर बढ़ रही है। राजा चकित हो बोले—"तुम कौन हो ?"

आकृति ने जोर से ठहाका लगाया। सारी घाटी गूंज उठी। धीरे-धीरे वह आकृति पास आकर एक मनुष्य में बदल गई। वह मनुष्य बोला—"राजन, तुम मुझे नहीं जानते, परंतु मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूं।

मुझे लोग तामस कहते हैं । जब तक मैं किसी के हृदय में रहता हूं, तब तक उस आदमी को चैन नहीं मिलता । मगर तुमने भगवान की भक्ति कर, मेरा बल क्षीण कर दिया है । अब मैं तुम्हें छोड़कर जा रहा हूं ।''

राजा बोले—''हे तामस, लगता है, तुम मेरी तपस्या का मतलब जानते हो । बताओ, मेरा मनोरथ कैसे पूरा होगा ?''

तामस ने उत्तर दिया—''राजन, इसी प्रकार भगवत भजन करते रहो ।'' कहकर वह अदृश्य हो गया ।

राजा ने तपस्या करते हुए कुछ दिन और बिताए । एक रात राजा गाढ़ी निद्रा में सो रहे थे । स्वप्न देखा—युद्ध चल रहा है । मार-काट मची है । तभी राजा की ओर एक लाल-सी आकृति बढ़ती हुई आई । आकृति के हाथ में लपलपाती हुई तलवार थी । तलवार के प्रहार के भय से राजा चीखे । नींद टूटी, तो उन्होंने अपने को उसी गुफा में पाया । सुबह उठकर नदी में स्नान करने गए । लौटकर देखा, स्वप्न वाली आकृति गुफा में बैठी है । राजा घबराकर बोले—''तुम कौन हो ? मुझसे क्या चाहते हो ?''



अब वह आकृति धीरे-धीरे शरीर का आकार धारण करने लगी । उस आकृति ने कहा—''राजन ! मैं राजस हूं । मैं जिसके पास रहता हूं, उसमें क्रोध और अहंकार की भावना पैदा हो जाती है । तुमने सच्चे मन से तपस्या की है । अब मैं तुम्हारे निर्मल हृदय में नहीं रह सकता । अब तुम्हारी मनोकामना जल्दी पूर्ण हो जाएगी ।'' इतना कहकर राजस वहां से चलने के लिए तैयार हुआ । राजा ने पूछा—''मेरी मनोकामना कैसे पूरी होगी ?'' उत्तर मिला—''तुम यही करते रहो ।'' आकृति अदृश्य हो गई ।

इसी तरह कुछ दिन और बीते । अब राजा में वैराग्य की भावना प्रबल होने लगी । एक दिन प्रातः काल वह भजन में बैठे थे । तभी अनुभव किया, कोई उनकी पीठ थपथपा रहा है । राजा ने आंखें खोलीं । वही तपस्वी उनके सामने खड़े मुसकरा रहे थे । राजा उनके चरणों में लोट गए । बोले—''महाराज, मुझे इतने दिन तपस्या करते हो गए । फिर भी आपका आशीर्वाद पूरा नहीं हो सका है । मुझे अब संतान की इच्छा भी नहीं है । राजपाट में क्या रखा है ?''

तपस्वी ने कहा—''राजन, अब तुम्हारे अंदर से तामसी और राजसी वृत्ति निकल गई हैं । तुम्हारा मन निर्मल हो गया । तुम राग-द्वेष से दूर हो गए हो ।''

राजा ने पूछा—''महाराज, अब मेरे लिए क्या आदेश है ?''

—''तुम अपने राजपाट को संभालो । कुछ दिनों बाद यज्ञ करना । यज्ञ में मिले हुए प्रसाद को श्रद्धा से पति-पत्नी दोनों ग्रहण करना । निश्चय ही संतान सुख मिलेगा ।''

राजा अपने राजपाट में लग गए । अच्छे मुहूर्त में उन्होंने यज्ञ रचाया । ब्राह्मणों को खूब दक्षिणा दी ।

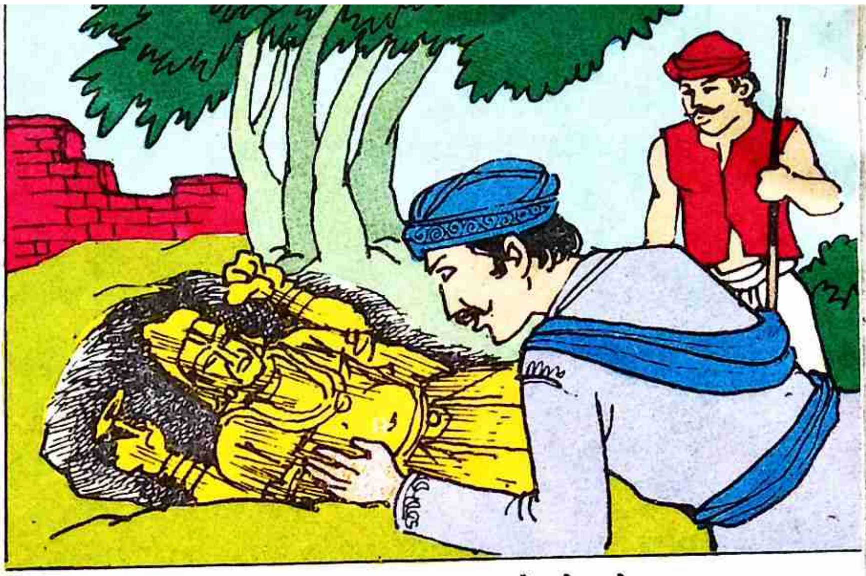
कुछ दिनों बाद राजा का मनोरथ पूरा हो गया । रानी की गोद में पुत्र था । सुनकर सारी प्रजा खुशी से झूम उठी । राजा ने बेटे का नाम सात्विक रखा । यही आगे चल कर एक ज्ञानी राजा के रूप में प्रसिद्ध हुआ ।

●

—वराह पुराण

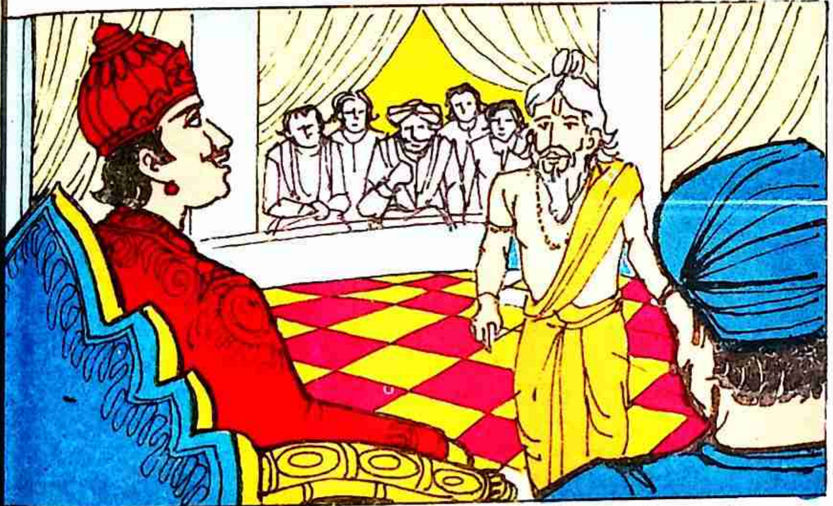
तेनालीराम (२५३)

सोने की मूर्ति



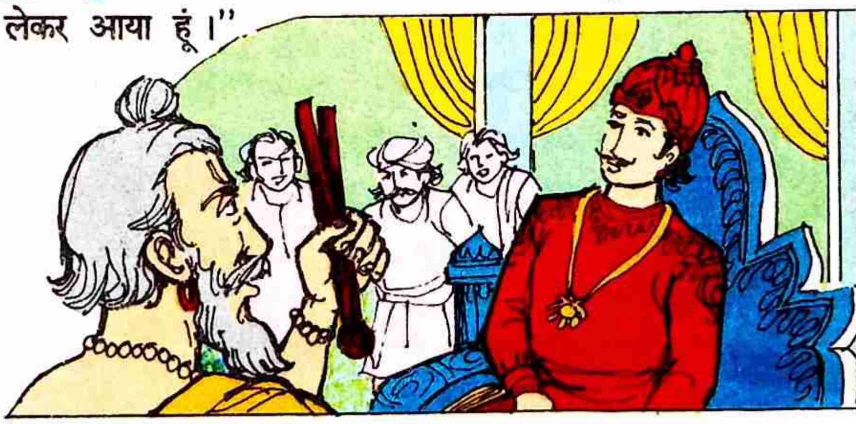
राजा कृष्णदेव राय एक विशाल मंदिर बनवाना चाहते थे। उन्होंने मंत्री को बुलाया। उससे उपयुक्त स्थान खोजने को कहा। मंत्री ने नगर के समीप जंगल के एक टुकड़े को चुना। राजा की सहमति से उसे साफ कराने का काम शुरू करा दिया।

साफ होते जंगल के बीचोंबीच किसी पुराने मंदिर के खंडहर मिले। उन खंडहरों में भगवान विष्णु की एक आदमकद स्वर्ण प्रतिमा भी मिली। सोने की ठोस मूर्ति देख, मंत्री को लालच आ गया। चुपके से उसे उठवाकर घर ले गया।



मजदूरों में तेनालीराम के आदमी भी थे। उन्होंने तेनालीराम को सारी बात बता दी। सुनकर तेनालीराम सोच में डूब गया।

भूमि पूजन होने के बाद मंदिर का निर्माण होने लगा। एक दिन राजा ने दरबारियों से पूछा कि भगवान की मूर्ति कैसे बनवाई जाए ? किसी ने कुछ कहा, तो किसी ने कुछ। राजा कुछ तय नहीं कर पाए। तभी दरबार में जटाजूटधारी एक संन्यासी आया। बोला— "महाराज, मैं आपकी चिंता जानता हूं। रात को भगवान ने सपने में मुझे दर्शन दिए। उन्हीं का संदेश लेकर आया हूं।"



राजा ने उत्सुकता से पूछा— "भगवान का संदेश ! शीघ्र बताइए, संन्यासी जी।"

साधु ने हाथ में पकड़ा हुआ चीमटा उठाया। कहा— "राजन, भगवान ने स्वयं अपनी आदमकद स्वर्ण प्रतिमा मंदिर के लिए भेज दी है। इस समय वह मंत्री के घर में है। उसे वहां से मंगवाकर मंदिर में प्रतिष्ठित कराओ।" कहकर साधु चला गया।

राजा ने मंत्री की ओर देखा। सच के सामने वह सकपका गया। स्वर्ण प्रतिमा की बात कबूल कर ली।



राजा ने चारों ओर देखा। तेनालीराम नहीं था। थोड़ी देर में तेनालीराम आया। उसे देख, सभी हंस पड़े। बोले— "महाराज, शायद यही थे साधु बाबा। कपड़े और जटा तो उतार आए, मगर कंठी-तिलक भूल गए।"

राजा भी देखकर हंस पड़े। बोले— "अब मूर्ति तेनालीराम की देखरेख में रहेगी।" मंत्री बेचारा खीजकर रह गया।

भूख लगी

—रामचन्द्र केशव डोंगरे

जब विदुर जी को यह पता चला कि कौरव पांडवों को लाक्षागृह में मारने की योजना बना रहे हैं, तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। वह तुरंत धृतराष्ट्र के पास जाकर बोले—"महाराज, यह मैं क्या सुन रहा हूं? यह तो पांडवों के साथ घोर अन्याय होगा। आप इस पाप कर्म को रोकिए।"

लेकिन धृतराष्ट्र ने विदुर जी की बात जैसे सुनी ही नहीं। वह तो दुर्योधन की विजय चाहते थे। विदुर सोच में डूब गए—'इसका मतलब यह हुआ कि महाराजा धृतराष्ट्र को दुर्योधन के इस पाप कर्म से कोई विरोध नहीं। अब मेरा राजमहल में इन लोगों के साथ निर्वाह सम्भव नहीं।' उस दुःख से दुखी विदुर तुरंत महल से निकले। रास्ते में जाते-जाते वह सोचने लगे—'ऐसी जगह रहने का क्या लाभ? मैं इन लोगों का विरोध नहीं कर सकता। मेरे पास इतनी शक्ति भी नहीं है। अब अलग रहूंगा, तो इनके बुरे कामों का भागीदार तो नहीं बनूंगा।'

सोचते हुए विदुर पत्नी के पास पहुंचे। जाकर उन्होंने सारी बात बताई। पत्नी सुलभा ने कहा—"हमें इसी वक्त, इस स्थान को त्याग देना चाहिए। पाप करने वाला और उसे चुपचाप सहने वाला दोनों ही दोषी होते हैं।"

विदुर और सुलभा दोनों हस्तिनापुर से दूर एकांत में चले गए। वहां नदी के किनारे कुटिया बनाकर रहने लगे। वे दोनों हर वक्त भगवान की पूजा में लगे रहते थे। उन्हें कभी भी राजमहल की सुविधाओं या स्वादिष्ट भोजन का ध्यान न आता। जंगल में जो भी कंद-मूल-फल या साग-भाजी मिलता, उसी को खाकर, वे संतुष्ट हो जाते।

एक दिन विदुर जी हस्तिनापुर नगर में गए। उन्होंने देखा, जगह-जगह तोरण-द्वार सज रहे थे। रंग-बिरंगे फूलों से सारा नगर महक रहा था। पूछने पर पता चला, भगवान श्रीकृष्ण पांडवों के दूत बनकर आ रहे हैं।

विदुर जी तुरंत घर की तरफ लौट चले। उन्हें ध्यान न रहा कि वह हस्तिनापुर किस काम से आए थे।

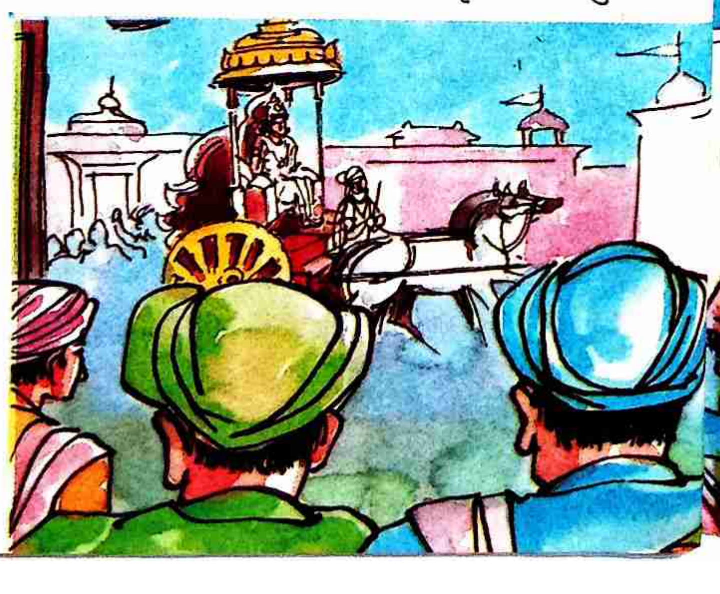
पत्नी सुलभा ने देखा, विदुर जी बहुत खुश नजर आ रहे हैं। पूछा तो वह बोले—"ऐसा लगता है, जैसे जीवन सफल हो गया। हम जिनकी पूजा करते हैं, वही श्रीकृष्ण आज हस्तिनापुर आ रहे हैं।"

—"क्या आप उन्हें खाने पर बुला सकते हैं। कितना मन है, प्रभु को अपने हाथ से बनी रसोई जिमाऊं।"

विदुर कहने लगे—"प्रभु को न्यौता तो दे सकता हूं, लेकिन इस टूटी-फूटी झोंपड़ी में हम उनका क्या आदर-सत्कार कर सकेंगे? दुर्योधन के घर के छप्पन भोग छोड़कर, हमारे घर की रूखी-सूखी क्या उन्हें भाएगी? नहीं, मैं तुम्हारे लिए उनका सुख-चैन नहीं छीनूंगा। हमारे घर उनके खाने लायक है भी क्या?"

दूसरे दिन श्रीकृष्ण रथ में बैठकर हस्तिनापुर आए। उनके दर्शनों के लिए अपार भीड़ उमड़ पड़ी। रास्ते भर लोग उनका जय-जयकार करते रहे। इस भीड़ में विदुर और सुलभा भी थे। दोनों ही श्रीकृष्ण का दर्शन कर धन्य-धन्य हो उठे थे।

स्वागत द्वारों को पार कर, श्रीकृष्ण राजसी ठाठ-बाट के साथ राज सभा में पहुंचे। वहां दुर्योधन और उसके मित्र राजाओं ने श्रीकृष्ण का स्वागत किया। संधि वार्ता होने लगी। श्रीकृष्ण ने बहुत



समझाया कि पांडवों को उनका उचित हिस्सा दिया जाए, किन्तु दुर्योधन कुछ भी देने को तैयार नहीं था।

इन्हीं बातों में खाने का समय हो गया। आज हस्तिनापुर के राजमहल में श्रीकृष्ण के लिए भोजन का शानदार प्रबंध किया ग़या था। दुर्योधन तो इसी बहाने अपनी शान-शौकत की छाप श्रीकृष्ण पर छोड़ना चाहता था। उसने श्रीकृष्ण से कहा—"चलिए, महल में राजसी भोजन आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। इस अवसर पर अनेक राजा-महाराजा भी आमंत्रित हैं।"

तभी दुर्योधन के मामा शकुनी ने कहा—"भला, महाराजा दुर्योधन का भोजन राजा खाने क्यों नहीं आएंगे। ऐसे स्वादिष्ट और विविध प्रकार के व्यंजन और किस राजमहल में बनते हैं!"

श्रीकृष्ण दुर्योधन का घमंड और शकुनी की बातों का सार समझ गए थे। उन्होंने बड़ी विनम्रता से कहा—"क्षमा करें। मुझे भोजन का निमंत्रण किसी और ने दिया है। वह मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। मैं वहीं जाकर भोजन करूंगा।" वह अपना रथ लेकर चल पड़े विदुर की कुटिया की तरफ।

श्रीकृष्ण ने कुटिया के द्वार से झांककर देखा, विदुर और उनकी पत्नी भजन-कीर्तन कर रहे थे। काफी देर तक श्रीकृष्ण ने पूजा समाप्ति की इंतजार की। फिर द्वार खटखटाया। सुलभा चौंकी। बोली—"द्वार पर कोई है? कौन हो सकता है?"

विदुर बोले—"द्वार पर द्वारिकाधीश ही होंगे। तुम उन्हें याद कर रही थीं न!"

"नहीं, नहीं, वह यहां क्यों आने लगे। आप ही ने बताया था, राजसभा जुड़ी है। फिर यहां आने के लिए उनके पास समय कहां होगा।"—सुलभा ने कहा।

"ठहरो! देखता हूं।"—विदुर जी ने द्वार खोला। श्रीकृष्ण को खड़ा देख, दोनों पति-पत्नी मंत्रमुग्ध से क्षणभर खड़े देखते रह गए। श्रीकृष्ण अंदर आकर कुशा के आसन पर बैठ गए। विदुर संकोच में डूबे जा रहे थे। तभी श्रीकृष्ण ने कहा—"बड़े जोर की भूख लगी है। कुछ खाने को दो।"

चूल्हे पर बर्तन में साग पका रखा था। पूजा से उठकर दोनों उसे ही खाते। और कुछ घर में था नहीं। श्रीकृष्ण को खाने के लिए क्या दें—उनकी समझ में नहीं आ रहा था।

श्रीकृष्ण मुसकराए। अपने आप हंडिया में से निकालकर साग खाने लगे। बोले—"बहुत ही स्वादिष्ट है। गोकुल छोड़ने के बाद ऐसा अच्छा भोजन आज मिल पाया है।"

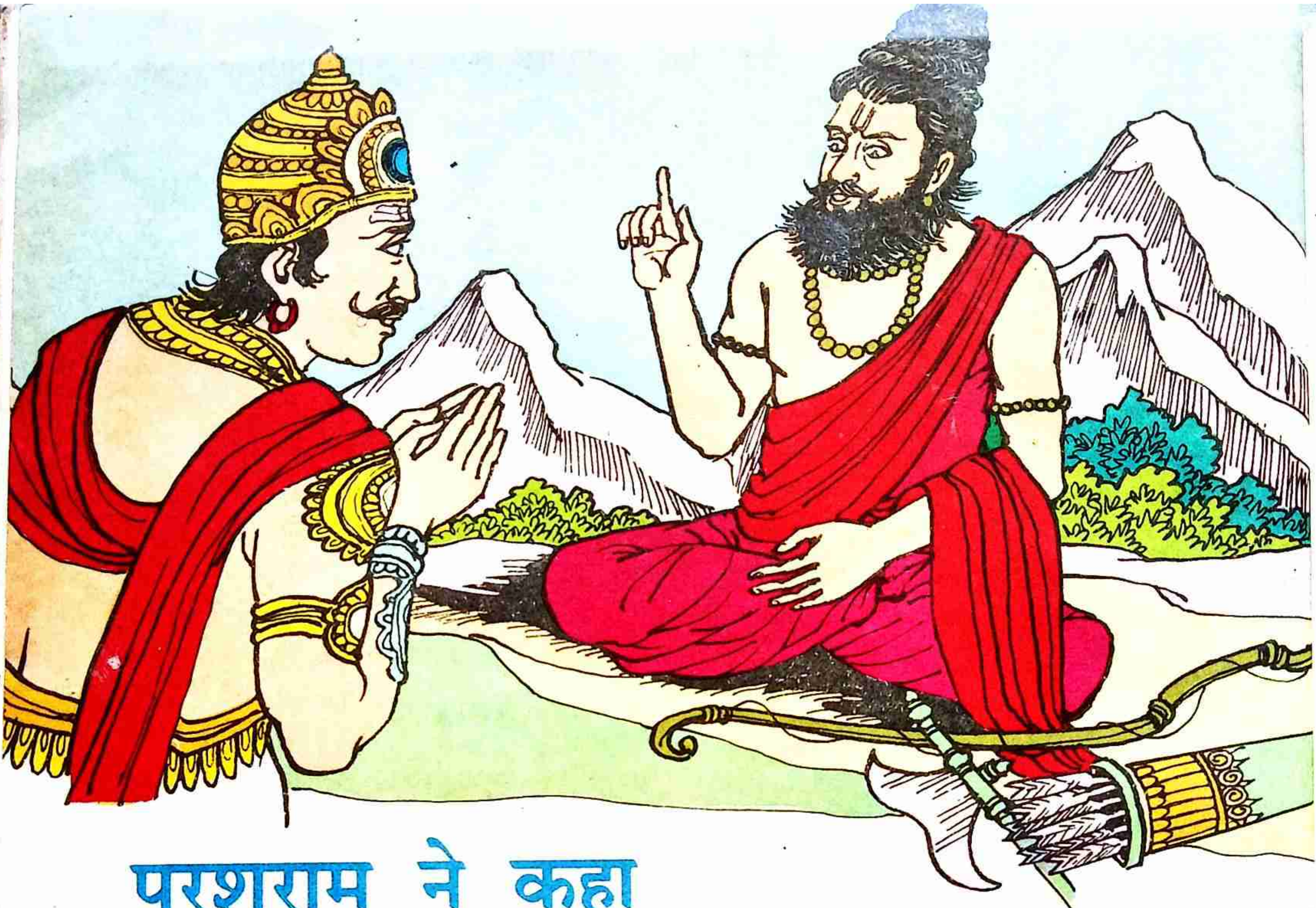
अब सुलभा बोली—"प्रभु, आप दुर्योधन का छत्तीस प्रकार का भोजन छोड़कर यहां साग खाने क्यों आए?"

"क्या करता! वह भोजन तुम्हें भी तो पसंद नहीं था, इसीलिए राजमहल छोड़कर चली आई। मेरे भक्तों को जो पसंद है, वही मुझे भाता है।"—कहते हुए श्रीकृष्ण साग खाते रहे।

भगवान की भक्त वत्सलता देख, विदुर और सुलभा की आंखें आंसुओं से भर उठीं।

भागवत





परशुराम ने कहा

—चन्द्रदत्त 'इन्दु'

बहुत पहले कालनेमि नामक महाशक्तिशाली एक असुर था। एक बार भगवान विष्णु के साथ उसका घोर युद्ध हुआ। विष्णुजी ने उसे युद्ध में मार गिराया। असुर गुरु शुक्राचार्य ने यह देखा, तो उन्होंने संजीवनी विद्या के बल से उसे जीवित कर दिया। वह पुनः भगवान विष्णु से बदला लेने की कोशिश में लग गया। अब घोर तप करने लगा। तप से ब्रह्माजी को प्रसन्न करना चाहता था। खाना-पीना छोड़ दिया। केवल दूब का रस पीकर तप में लगा रहता। इसी तरह तप करते उसे अनेक वर्ष बीत गए।

उसकी तपस्या से प्रसन्न हो, ब्रह्माजी प्रकट हुए। उसे वर मांगने को कहा। कालनेमि बोला—''प्रभु, देवताओं के हाथ से मेरी मृत्यु और पराजय न हो।''

ब्रह्माजी ने कहा—''ठीक है, इस योनि में तुम्हें देवता पराजित नहीं कर पाएंगे। न ही तुम उनके हाथों मारे जाओगे।''

वर पाकर कालनेमि बहुत प्रसन्न हुआ। मगर ज्यादा दिन तक नहीं। कुछ समय बाद किसी रोग से उसकी मृत्यु हो गई। अब यही कालनेमि पृथ्वी पर राजा उग्रसेन की रानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ। इसका नाम रखा गया कंस। बचपन से ही यह बड़ा शक्तिशाली और क्रोधी स्वभाव का था। युवा अवस्था में बड़े-बड़े पहलवानों के साथ कुश्ती लड़ा करता था। अपने पराक्रमी बेटे को देख, उग्रसेन भी प्रसन्न थे। कंस था भी पिता का आज्ञाकारी पुत्र।

एक बार की बात है—मगधराज जरासंध दिग्विजय के लिए निकला। यमुना नदी के निकट उसकी छावनी पड़ी। उसके पास कुवलयापीड़ नामक

एक हाथी था। हाथी बहुत ही बलवान था। उस दिन हाथी ने उन सांकलों को तोड़ दिया, जिनसे वह बंधा था। सांकलों को तोड़, वह शिविर के बाहर भाग चला। रास्ते में तोड़-फोड़ करता हाथी, कंस के अखाड़े में आ पहुंचा। उस समय कंस पहलवानों के साथ कुश्ती लड़ रहा था। हाथी को देख, पहलवान और कंस के योद्धा भाग निकले, किंतु कंस नहीं डरा। उसने लपककर हाथी की सूंड पकड़ ली। धक्का देकर हाथी को नीचे गिरा दिया। हाथी उठकर चिंघाड़ा। मगर कंस ने इस बार हाथी को इतनी जोर से धक्का दिया कि वह डरकर भाग निकला। फिर उसने जरासंध के शिविर में आकर ही दम लिया।

युवराज कंस के पराक्रम को देख, जरासंध बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने अपनी अस्ति और प्राप्ति नाम की राजकुमारियों का विवाह कंस के साथ कर, उसे अपना जामाता बना लिया। इस तरह कंस के बल की ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी। बहुत से राजाओं ने तो कंस के डर से मथुरा राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली। अब मथुरा के शासन की सीमाएं बढ़ने लगी। मगर इन बढ़ती सीमाओं के साथ, कंस की युद्ध की प्यास भी बढ़ती जा रही थी। कंस द्वंद्व युद्ध का भी प्रेमी था। अपने बाहुबल से उसने बड़े शक्तिशाली राजा और दानवों को पराजित किया। एक बार कंस माहिष्मति नरेश के यहां जा पहुंचा। वहां पांच नामी पहलवान—चाणूर, मुष्टिक, कूट, तोशल आदि थे। कंस ने वहां जाकर उन पहलवानों को ललकारा। कहा—"तुम मुझसे लड़ो। यदि जीत गए, तो मैं तुम्हारा सेवक होकर रहूंगा। और अगर मेरी जीत हो गई, तो तुम्हें अपना सेवक बना लूंगा।"

कंस की गर्वोक्ति सुन, माहिष्मति नरेश हंसा। बोला—"तुम्हारी शर्त हमें मंजूर है।"

राजा के सामने मल्लयुद्ध होने लगा। ज्यों ही चाणूर ताल ठोकता आगे आया, कंस ने चीते जैसी फुर्ती से उसे उठाकर जमीन पर दे मारा। तभी मुष्टिक क्रोध से घूंसा ताने कंस की ओर लपका। कंस ने एक ही मुक्के से उसे धराशायी कर दिया। अब कूट आया। कंस ने उसके एक लात जमाई। वह जमीन की धूल चाटने लगा।

एक बार कंस के एक दूत ने उसे बताया कि द्विविद नामक एक बलवान वानर प्रवर्षण गिरि पर रहता है। बड़े-बड़े दानव तक उसका लोहा मान चुके हैं। कंस ने यह सुना, तो प्रवर्षण गिरि पर जा पहुंचा। उसने वानर को युद्ध के लिए ललकारा। पूरे बीस दिन तक उन दोनों के बीच द्वंद्व युद्ध चला। अंत में वह वानर भी कंस से हार गया, किंतु उस बलवान वानर से कंस ने मित्रता कर ली। इस तरह अनेक द्वंद्व युद्ध लड़ने के कारण कंस भी थक गया था। वह कुछ दिन एकांत में आराम करना चाहता था। किसी सुंदर स्थान की तलाश करता महेंद्र गिरि पर पहुंचा।

उस पर्वत पर परशुराम तपस्या कर रहे थे। कंस के आने से वहां पशु-पक्षियों में भगदड़ मच गई। परशुरामजी ने क्रोध से आंखें खोल, इधर-उधर देखा। तभी कंस वहां आया। वह परशुरामजी की प्रदक्षिणा कर, उनके चरणों में लेट गया। परशुरामजी बोले—"तू बल के घमंड में रहने वाला क्षत्रिय कौन है? मैं अभी तुझे मौत के मुंह में भेजता हूं।"

कंस ने कहा—"मैं यहां किसी से लड़ने नहीं, बल्कि आराम करने आया हूं। आपको कष्ट पहुंचाने का मेरा कोई इरादा नहीं है। मैं तपस्वियों का सेवक हूं।"



कंस परशुरामजी से क्षमा मांगने लगा। परशुरामजी ने कहा—"मेरे पास एक महान धनुष है। इसका वजन सैकड़ों मन है। त्रिपुरासुर से युद्ध के समय भगवान विष्णु ने यह धनुष भगवान शंकर को दिया था। फिर युद्ध करने के लिए भगवान शंकर ने यह धनुष मुझे दे दिया। यदि तू इसकी प्रत्यंचा चढ़ा सका, तो मैं तुझे छोड़ दूंगा, वर्ना अभी तेरे सारे बल का विनाश कर दूंगा।"

कंस ने उस धनुष को उठा लिया। फिर पलक झपकते ही उसकी डोर को कान तक खींच लिया। प्रत्यंचा के खींचने से बिजली की गड़गड़ाहट के समान शब्द होने लगा। उसकी भीषण ध्वनि से सारा पर्वत कांप उठा। कंस ने बार-बार परशुरामजी को प्रणाम किया। परशुरामजी ने उसे क्षमा कर दिया। धनुष उसे देकर बोले—"लो, धनुष को ले जाओ। जब-जब तुम इसकी प्रत्यंचा चढ़ाकर युद्ध करोगे, विजय मिलेगी। मगर याद रखना, जो इसे आकर तोड़ देगा, उसी के हाथ तुम्हारी मृत्यु होगी। अब तुम उत्तर दिशा में चले जाओ। वहां एक रमणीक सरोवर है। वहीं जाकर जितने दिन चाहो, आराम करो।"

धनुष पाकर कंस बहुत प्रसन्न हुआ। परशुरामजी को प्रणाम कर, वह सरोवर पर चला गया। वहां कंस ने सुख पूर्वक कई महीने बिताए।

महेंद्रगिरि पर अनेक तपस्वी तपस्या में लीन रहते थे। यहां रहते हुए कंस ने तपस्वियों की संगति में शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया।

महेंद्रगिरि पर्वत से कंस मथुरा लौट रहा था। रास्ते में उसने हाथियों पर सवार कुछ लोगों को आते देखा। एक हाथी पर सुनहरी हौदा रखा था। उसमें बहुमूल्य हीरे-माणिक्य जड़े थे। ऊपर सतरंगी आभा वाला एक छत्र टंगा था। कंस को मालूम चला कि दैत्यराज शम्बरासुर की सवारी जा रही है। शम्बरासुर उस समय के शक्तिशाली और सबसे समृद्ध दैत्यों में गिना जाता था। उसने देवराज इंद्र को भी युद्ध में हराया था।

शम्बरासुर को देख, कंस की सोई युद्ध पिपासा जैसे फिर जाग उठी। उसने परशुरामजी से पाए धनुष की प्रत्यंचा खींचकर दैत्यराज को ललकारा। शम्बरासुर भी कंस की ख्याति को सुन चुका था। उसने हाथी से उतर, कंस का स्वागत कर, मित्रता का हाथ आगे बढ़ाया। कंस ने उसकी बात मान ली। शम्बरासुर ने मित्रता की भेंट स्वरूप अपना सजा-धजा हाथी कंस को भेंटकर दिया। कंस उसी पर बैठकर मथुरा लौट आया।

अपने बेटे की ख्याति और बड़े-बड़े बलवानों को हराने की बात सुन, राजा उग्रसेन बहुत प्रसन्न थे। कंस लौटा, तो मथुरा दुलहन की तरह सजाई गई। सभी नर-नारियों ने बड़े उत्साह के साथ राजकुमार कंस का स्वागत किया।

समय तेजी से बीत रहा था। शक्ति और राजसत्ता के मद में चूर था कंस। मगर फिर भी कंस अपने पिता का आज्ञाकारी था। वह अपनी बहन देवकी को भी बहुत प्यार करता था। गर्ग मुनि ने देवकी के लिए राजा वसुदेव को योग्य वर बताया। कंस ने धूमधाम से बहन की शादी की। कंस स्वयं रथ चलाकर अपनी प्यारी बहन को विदा करने चला, मगर आकाशवाणी सुनकर उसकी जीवन धारा ही बदल गई। मृत्यु के भय से कंस ने बहन और जीजा को ही कैद नहीं किया, अपितु पिता से राज्य छीनकर उन्हें भी बंदी बना लिया। अब प्राणों के मोह से बलशाली कंस अत्याचारी बन बैठा। अंत में श्रीकृष्ण ने परशुरामजी के धनुष को तोड़कर उनकी वाणी को सत्य सिद्ध कर, कंस का वध कर दिया।

एक बार एक ऋषि ने व्यासजी से पूछा—"भगवान, आकाशवाणी ने कंस को चेतावनी देकर क्या भला अच्छा किया? उससे तो देवकी पर ही विपत्तियों का पहाड़ टूटा। कंस को पता न चलता, तो भी देवकी का आठवां पुत्र उसे मार ही देता?"

व्यासजी ने कहा—"यह सब समय की लीला थी। समय को यह सब करना था। देवकी को भी कष्ट सहना था और वसुदेव तथा राजा उग्रसेन को भी। समय के आगे बड़े से बड़े बलवान हार गए।

—अग्निपुराण

हाथी जी उठा

—अमरजीत सिंह

कई सौ वर्ष पहले दिल्ली में यमुना के किनारे एक ऊंचा टीला था। नदी का कल-कल करता जल, दूर तक फैले पेड़ों के झुरमुट, शीतल हवा के झोंके जैसे मन को मोह लेते थे। एक बार गुरु नानक यात्रा करते-करते यहां पहुंचे। उन्होंने इस रमणीय स्थान को देखा। कुछ दिन यहां रुकने का निश्चय किया।

एक दिन प्रातः गुरू नानक यमुना के किनारे बैठे, भगवान की आराधना में लीन थे। अचानक उनके कानों में किसी के रोने की आवाज आई। उनका ध्यान टूटा। पास ही बैठे अपने साथी मरदाना से बोले—"जाओ, जाकर देखो, यह किसके रोने की आवाज है? पता करो, उसे क्या कष्ट है?"

मरदाना रोने की आवाज की दिशा में चल दिया। कुछ समय बाद वह लौट आया। उसने नानक जी को बताया—"पास ही रहने वाले महावत का एक हाथी मर गया है। सारा परिवार इस दुःख से रो रहा है। उनको भय है कि बादशाह हाथी के मरने का दोषी उनको ठहराएगा। उन्हें कैद कर लेगा। हाथियों की देखभाल के लिए वह अब कोई दूसरा सेवक रख लेगा। इससे उनके परिवार की रोजी-रोटी का सहारा जाता रहेगा।"

नानक जी यह सुनकर सोच में पड़ गए। इस परिवार ने उनकी बड़ी सेवा की थी। वह वहां से उठकर महावत के घर पहुंचे। उनको देखकर सारा परिवार श्रद्धा से भर उठा। आंखों से आंसुओं की अविरल धारा बहने लगी। परिवार सोच रहा था—'शायद यह फकीर ही अब उनकी विपदा को दूर कर सकता है।'

गुरु जी के कहने पर महावत ने हाथी को प्यार से दुलारा। उसके मुंह को दुलार से थपथपाया। इसी बीच नानक जी ने पानी मंगवाकर हाथी के मुंह पर छिड़का। हाथी के शरीर में जैसे फिर से प्राण आ गए। उसने आंखें खोलीं। वह धीरे-धीरे अपने पैरों पर खड़ा हो गया।

वास्तव में उस वर्ष पड़ रही भीषण गरमी ने हाथी को निढाल कर दिया था, जिसे वह सहन न कर सका। बेहोश होकर गिर पड़ा था।

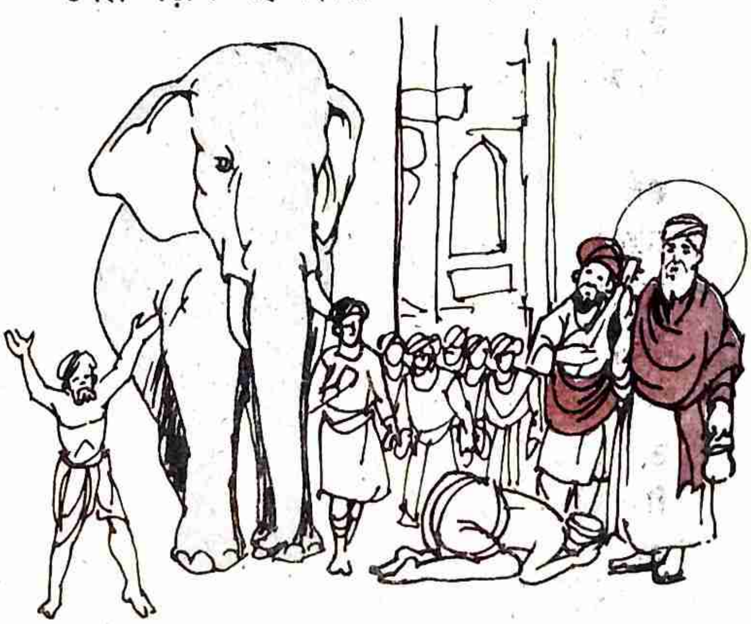
हाथी को जीवित करने की घटना सारे शहर में फैल गई। सिकंदर लोदी, जो उस समय दिल्ली का बादशाह था, इस खबर को सुनकर अचम्भे में पड़ गया।

इस घटना को अभी थोड़े ही दिन बीते थे—बादशाह का एक और हाथी, जिसको वह बहुत चाहता था, मर गया। उसे फकीर की याद आई। उसने गुरु जी को बुलवा भेजा।

जब गुरु नानक बादशाह के पास पहुंचे, तो उसने गुरु जी को आदेश दिया—"इस मरे हुए हाथी को फौरन जिंदा कर दो।"

गुरुदेव कुछ क्षण मौन रहे। बादशाह के इस व्यवहार से वह बहुत दुखी हुए। उन्होंने उसे समझाया—"परमात्मा के कार्य में विघ्न डालने का मनुष्य को कोई अधिकार नहीं। मृत्यु और जीवन उस परमपिता के हाथ में है। मनुष्य कुछ नहीं कर सकता।"

गुरु जी का उत्तर सुनकर सिकंदर लोदी क्रोध से उबल पड़ा। वह दिल्ली का बादशाह था। एक



फकीर उसका हुक्म न माने, यह बात वह कैसे सहन कर सकता था।

बादशाह ने गुरु नानक को जेल में डाल दिया। इससे पहले भी उसने बहुत-से लोगों को जेल में डाल रखा था। जो उसके विचारों से सहमत न होता, उसको जेल की सजा भुगतनी पड़ती।

जेल में कैद लोगों की दयनीय अवस्था देख, गुरु जी का हृदय द्रवित हो उठता। वह परमात्मा की भक्ति में लीन हो जाते। प्रभु भक्ति में गाई उनकी वाणी से सारा वातावरण अलौकिक संगीत से भर जाता।

जेल के अधिकारी बादशाह के पास पहुंचे। उन्होंने गुरु जी को छोड़ने की विनती की। परंतु अभिमानी बादशाह ने अपनी ज़िद न छोड़ी। अधिकारी निराश होकर लौट आए।

रात काफी बीत चुकी थी। दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी को नींद नहीं आ रही थी। उसका मन व्याकुल था। उसे लगता था, जैसे उससे कोई भारी अपराध हो गया हो। वह इसी चिंता में डूबा था, अचानक धरती कांप उठी। भारी गड़गड़ाहट की आवाज से वह भयभीत हो गया। हर तरफ लोगों के रोने-चिल्लाने की आवाजें आने लगीं। नगर में भारी भूचाल आ गया।

पूरी रात बादशाह सो न सका। उसे अपनी गलती का पता चल गया था।

अभी रात थोड़ी शेष थी। व्याकुल बादशाह जेल की तरफ चल पड़ा। वहां पहुंचते ही उसने जेल अधिकारियों को हुक्म दिया—"गुरु नानक को तुरंत छोड़ दिया जाए।" उसने गुरू जी से अपने इस अपराध के लिए क्षमा मांगी।

गुरू नानक जेल से अकेले रिहा होने के लिए तैयार न थे। उन्होंने बादशाह से दूसरे निर्दोष लोगों को भी तुरंत छोड़ने के लिए कहा। बादशाह गुरू जी की बात फौरन मान गया। नानक जी भजन गाते अपने रास्ते चले गए।

—जन्म साखी

बजी वीणा

—सुरेन्द्र वत्स शास्त्री

पूर्व काल में उज्जैन में एक ब्राह्मण रहता था। उसके पांच पुत्र थे। उनके नाम थे—कवि, शुचि, दृढ़, दांत तथा हंस। पांचों संगीत कला में निपुण तथा मधुर कंठ वाले थे। अनेक राज सभाओं में गायन करने और मूल्यवान पुरस्कार पाने से उनके पास काफी धन हो गया था।

एक बार वे घूमते हुए मथुरापुर के राजा सुवीर के पास आए। सुवीर संगीत का शौकीन था। उसके दरबार में कादम्बिनी नामक नर्तकी संगीत की धुनों पर नृत्य करती थी।

जब पांचों भाई राज दरबार में पहुंचे, तो संगीत बज रहा था। कादम्बिनी नृत्य कर रही थी। उन पांचों ने जाते ही राजा से कहा—"तुम्हें संगीत का ज्ञान नहीं। तुम्हारे यहां वीणा के दो तार ढीले हैं।"

राजा ने देखा, तो उनकी बात ठीक थी। बस, राजा ने उन्हें संगीत का आचार्य मान, उनका पूरा सत्कार किया। कादम्बिनी भी हैरान थी कि आज पहली बार किसी ने उसके संगीत में कमी बताई थी।

उन पांचों ने स्वयं मधुर संगीत बजाया। कादम्बिनी के पैर थिरकने लगे। पूरा दरबार संगीत की लहरों में झूमने लगा। राजा ने उन्हें खूब इनाम दिया। कादम्बिनी ने दासी के हाथों पाचों भाइयों को अलग-अलग पत्र भेजे।

कवि को लिखे पत्र में कादम्बिनी ने एकादशी के दिन यमुना किनारे बने देवालय में मिलने का समय दिया। शुचि को पत्र में द्वादशी के दिन उसी स्थान पर आने को कहा था। इसी प्रकार दृढ़ से त्रयोदशी को, दांत तथा हंस को क्रमशः चतुर्दशी और पूर्णिमा के दिन मिलने के लिए लिखा।

यमुना के किनारे बने उस देवालय में एक ब्रह्मचारी रहते थे। वह एकांत प्रेमी थे। भगवान के भजन में अपना समय गुजारते थे। किसी की बुराई सुनने को न मिले, इसलिए वह भिक्षा लेने गांव में भी नहीं जाते

थे। जंगल में उन्होंने गऊएं पाल रखी थीं। उन्हीं का दूध पीकर तथा कंद-मूल खाकर वह गुजर कर रहे थे।

एकादशी के दिन उन्होंने व्रत रखा था। वह देवालय में ईश्वर भजन में मग्न थे। संध्या के समय कादम्बिनी ने उस देवालय में प्रवेश किया। थोड़ी देर में कवि भी वहां पहुंच गया। उन दोनों ने देखा, ब्रह्मचारी ऋषि प्रभु भक्ति में लीन हैं। वे भी वहीं बैठ गए। ब्रह्मचारी ने पंचामृत बनाया। उन्हें भी प्रसाद रूप में दिया। पंचामृत से उनमें भक्ति भाव जाग उठा। वे रात भर जागरण करते रहे। कवि ने वीणा बजाई। कादम्बिनी ने नृत्य किया। पूरा देवालय संगीत की झंकार से गूंज उठा। सुबह कवि और कदम्बिनी चले गए।

अगले दिन द्वादशी थी। ब्रह्मचारी मंदिर में साधनालीन थे। तभी शुचि ने मंदिर में प्रवेश किया। कुछ देर बाद कादम्बिनी आ गई। उन्होंने ब्रह्मचारी को भक्ति करते देखा, तो स्वयं भी भक्ति में लीन हो गए।

जब ब्रह्मचारी उठे, तो उन्होंने एक युवक और युवती को प्रभु भक्ति में डूबे देखा। उन्होंने आशीर्वाद दिया तथा प्रसाद रूप में पंचामृत प्रदान किया।

प्रसाद लेकर कादम्बिनी ने भगवान की मूर्ति के सम्मुख सारी रात नृत्य किया। शुचि ने वाद्य यंत्र बजाया। प्रातःकाल दोनों चले गए।

अगले दिन दृढ़ आया। उसने भी पूरी रात भगवान के सम्मुख संगीत साधना की। कादम्बिनी नृत्य करती रही। चौथे दिन दांत आया। उसने संगीत के नए-नए सुर बजाए। कादम्बिनी भी संगीत धुनों पर थिरकती रही।

पांचवें दिन हंस आया। ब्रह्मचारी भक्ति में लीन थे। कादम्बिनी भी आ गई। जब ब्रह्मचारी भक्ति से उठे, तो उन्होंने उन दोनों को पंचामृत प्रदान किया। रात को कादम्बिनी ने नृत्य किया। हंस ने वीणा बजाई।

सुबह जब वे जाने लगे, तो ब्रह्मचारी ने कादम्बिनी को एकांत में बुलाकर पूछा— ''बेटी, तुम प्रतिदिन यहां आती हो। सारी रात नृत्य करती हो। आखिर तुम ईश्वर से क्या चाहती हो?''

नर्तकी बोली—''मुनिवर! मैं इन पांचों भाइयों के स्वर और संगीत पर मोहित हूं। मैं चाहती हूं कि मुझ में इनके संगीत पर नृत्य करने की शक्ति आ जाए।''

ब्रह्मचारी ने कहा—''बेटी! तुम वास्तव में इसकी अधिकारी हो। तुम्हें सब आ जाएगा।''

कादम्बिनी ने उनके चरण स्पर्श किए और संकोच भाव से एक ओर खड़ी हो गई।

वह पुनः बोले—''मैं तुम्हारे मनोभावों को समझ रहा हूं। तुम इनमें से जिसे पति के रूप में वरण करना चाहो, मुझे उसका नाम बताओ।''

कादम्बिनी सोच में पड़ गई। किसका नाम ले? वह तो पांचों को चाहती थी।

ब्रह्मचारी ने सोचा—'नारी लज्जा के कारण पति का नाम नहीं ले रही है।' उन्होंने आशीर्वाद दे दिया, ''पुत्री, जो भी अब तुम्हारे मन में है, अगले जन्म में वही तेरा पति होगा।''

नर्तकी ने सुना और सोचा, यह तो अनर्थ हो गया। पर अब क्या हो सकता था? ब्रह्मचारी का वरदान झूठा नहीं हो सकता। वह चुपचाप महल में लौट आई।

अगले जन्म में वे पांचों भाई पांच पांडव बन कुंती के घर पैदा हुए। कादम्बिनी राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी बनी। समय के साथ, मुनि के वचनानुसार द्रौपदी पांचों पांडवों की पत्नी बनी।

—पद्मपुराण



नाग देवी

— उषा बंसी

प्रलयकाल के बाद की बात है। धरती का जल धीरे-धीरे सूख रहा था। किंतु जल सूखने से एक नई मुसीबत पैदा हो गई थी। जल में अनेक विषैले सांप पैदा हो गए थे। जल सूखने से वे धरती पर आ गए। मनुष्यों को काटने लगे। सांपों के काटने से अनेक मनुष्य काल के गाल में चले गए। सांपों से लोग भयभीत हो गए थे। आए दिन सांपों के जहर से मरने के कारण मनुष्यों की संख्या कम होने लगी। जीवन सुरक्षित नहीं रहा। सभी मनुष्य मिलकर कश्यप मुनि के पास गए। उन्हें अपनी मुसीबत बताते हुए कहा— ''आप ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं। धरती पर सृष्टि निर्माण के लिए आए हैं। आजकल सर्पों से मानव जीवन खतरे में पड़ा है। आप हमारी रक्षा कीजिए।'' कश्यप जी ब्रह्माजी के पास गए। उन्हें सारी बात बताई। ब्रह्माजी ने अपने मन से एक देवी की उत्पत्ति की। देवी का जन्म मन से हुआ था, इस कारण इनका नाम 'मनसा' रखा गया। उन्हें मुनि कश्यप जी को सौंप, ब्रह्मा जी बोले— ''यह तुम्हारी पुत्री है। तुम सर्प विष नाशक मंत्रों को रचो। उनकी अधिष्ठात्री देवी मनसा ही होगी।''

दिन बीतने लगे। मनसा देवी युवा हुईं। वह देवी स्वरूप होने के साथ-साथ शास्त्रों की ज्ञाता भी थीं। उन्होंने भगवान शंकर की तपस्या की थी। शुभ मूहुर्त देखकर कश्यप जी ने इनका विवाह महान तपस्वी मुनि जरत्कारु जी से कर दिया। दोनों का जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा। देवी मनसा भी अपने पति की सेवा पूरी आस्था से करती थीं। उनकी पूजा का समय तथा भोजन आदि की व्यवस्था का उन्हें विशेष ध्यान रहता था।

एक दिन मनसा के पति जरत्कारु एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे। मनसा भी पास ही बैठी हुई थीं। संध्या होने को आ गई, लेकिन मुनि की नींद नहीं खुली। संध्या काल देखकर मनसा जी ने सोचा— यह ऋषि के संध्या-वंदन का समय है। अगर यह कर्म छूट गया, तो इनकी तपस्या क्षीण हो जाएगी। यही सोचकर उन्होंने अपने पति को नींद से जगा दिया।

मुनि स्वप्न लोक में विचर रहे थे। पत्नी के जगाने पर उनकी नींद में विघ्न पड़ा। क्रोधित होकर उन्होंने अपनी पत्नी से कहा— ''अब मैं तुम्हें छोड़कर चला जाऊंगा। तुम्हें मेरे सुख-दुःख की चिंता नहीं, तो तुम्हारे पास रहने से क्या लाभ ?''

मनसा ने क्षमा मांगते हुए कहा— ''मैंने तो इसलिए जगाया, जिससे आपका नियम भंग न हो। आपको कष्ट पहुंचाने की बात मेरे मन में भी न थी।''

यह सुनकर मुनि बोले— ''इस सूर्य ने भी मेरी प्रतीक्षा न की। मेरे जागने पर ही छिप जाता। मैं इसे ही शाप दूंगा।'' अब सूर्य भी वहां आ पहुंचे। उन्होंने मुनि जरत्कारु से कहा— ''इसमें देवी मनसा का कोई दोष नहीं। आपके संध्या-वंदन करने के लिए ही इन्होंने आपको जगाया था। रही मुझे शाप देने की बात। मैं तो समय के अधीन हूं। इसमें मेरा क्या दोष ?''

सूर्यदेव की विनम्रता से मुनि का क्रोध शांत हो



गया। उन्होंने मनसा देवी को क्षमा कर दिया, किंतु मनसा को क्षमा करने के बाद भी मुनि को अपना वचन तो सत्य करना ही था। अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा हेतु, वह वहां से जाने लगे। विपत्ति की इस घड़ी में मनसा ने अपने इष्टदेव शंकरजी, ब्रह्माजी तथा पिता कश्यप आदि का स्मरण किया। सभी ने मुनि जरत्कारु को भली-भांति समझाया। कहा— ''इस प्रकार मनसा का त्याग करना उचित नहीं, क्योंकि अभी तक आपने गृहस्थ जीवन शुरू नहीं किया है। आप इनको संतान देकर जाएं, तभी आपका तथा मनसा का जीवन सफल हो सकेगा, अन्यथा आपको भी पाप का भागी बनना पड़ेगा।''

मुनि जरत्कारु देवताओं का अनुरोध मान गए। कुछ दिनों बाद उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र सभी गुणों से सम्पन्न तथा तेजस्वी था। उसका नाम 'आस्तीक' था। जरत्कारु जी का मन संसारिक दुखों से विचलित था, इसीलिए उन्होंने पुष्कर क्षेत्र में जाकर तपस्या करने का संकल्प किया। वह आस्तीक को मनसा को सौंप, तपस्या करने चले गए। मगर जाते हुए कह गए— ''तुम जब भी याद करोगी, मैं आऊंगा।''

देवी मनसा भी अपने पुत्र को लेकर पिता कश्यप जी के आश्रम में आ गईं। वहां आस्तीक का लालन-पालन करने लगीं।

एक बार मुनि जरत्कारु भगवान शंकर को प्रणाम करने के विचार से कैलाश पर्वत पर आए। संयोग से पुत्र व पत्नी मनसा से भी उनकी मुलाकात हुई। बालक अब काफी बड़ा हो चुका था। मनसा जी पति धर्म का पालन भी करना चाहती थीं। मुनि जरत्कारु जी के साथ तपस्या करने की इच्छा व्यक्त की। किंतु अब मुनि ने कहा— ''मैंने तुम्हें क्रोधवश छोड़ा है, इसीलिए इसका तप द्वारा निवारण भी मैं अकेले ही करना चाहता हूं।'' इतना कहकर मुनि फिर चले गए।

मनसा जी ने दृढ़ निश्चय कर लिया था। देवी मनसा अपने पुत्र आस्तीक को पिता कश्यप के पास छोड़, भगवान विष्णु की तपस्या करने लगीं। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने वरदान मांगने को कहा। मनसा देवी ने कहा— ''प्रभु, यदि आप वरदान देना ही चाहते हैं, तो मेरे पति को इंद्रलोक का अधिकारी बना दें।''

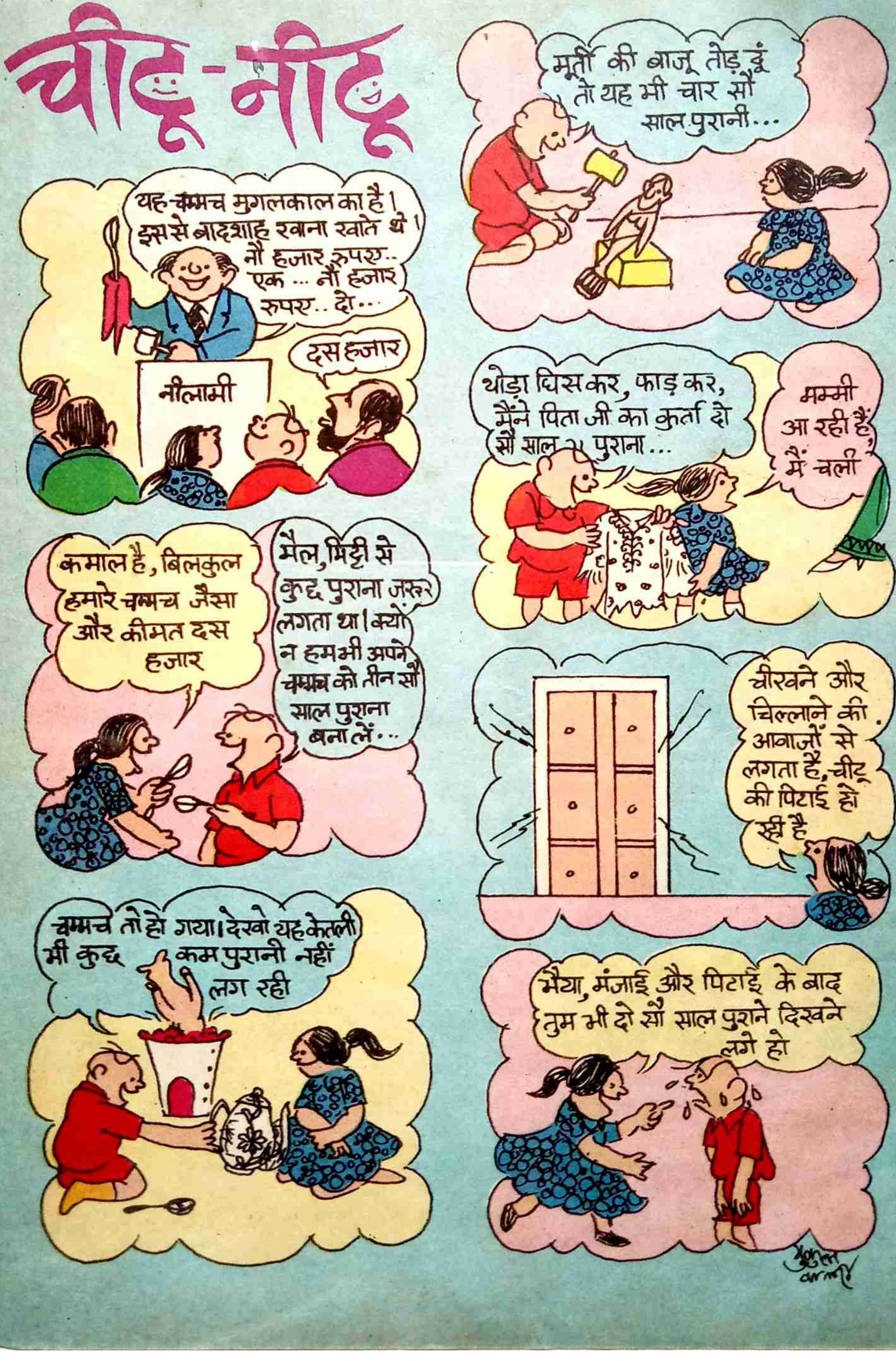
भगवान विष्णु ने कहा— ''देवी! तुमने अल्प समय में ही निस्वार्थ तपस्या कर, पत्नी धर्म का निर्वाह किया है। तुम्हारे पति को वह स्थान मिलेगा। तुम्हारे पति ने क्रोधवश तुम्हें छोड़ दिया था, किंतु तुमने सहनशीलता से काम लेते हुए अपने कर्त्तव्य की पूर्ति की है। मेरे दूत तुम्हें सशरीर इंद्रलोक ले जाने आए हैं। तुम्हारे यश की कीर्ति स्वर्ग के अलावा इस भूमंडल में भी फैली रहेगी। तुम धरती पर देवी की तरह पूजी जाओगी।''

देवी मनसा स्वर्ग पहुंची, तो देवराज इंद्र ने मनसा की पूजा और वंदना की तथा उन्हें यह आशीर्वाद भी दिया— ''तुम सिद्धयोगिनी हो तथा मन से सर्वत्र गमन करने की शक्ति रखती हो, इसलिए भी तुम्हारी 'मनसा देवी' के नाम से हर जगह पूजा होगी। जो तुम्हारी पूजा करेगा, उसे नागों से भय नहीं रहेगा।''

कहते हैं— महाभारत युद्ध के बाद गंगा तट पर राजा परीक्षित को जब तक्षक ने क्रोध में आकर काल का ग्रास बना दिया, उनके पुत्र राजा जनमेजय ने एक सर्पयज्ञ करवाया। उसमें मंत्रों के वश में होकर नाग आ-आकर यज्ञ की ज्वाला में गिरते और भस्म हो जाते। इस प्रकार हजारों नाग जनमेजय के यज्ञ की बलि चढ़ गए।

यह देखकर नागों में हाहाकार मच गया। वे भागे-भागे आस्तीक के पास गए। उनसे नागों के वंश को नष्ट होने से बचाने की प्रार्थना की। कहा— ''आप देवी मनसा के पुत्र हैं। आप भी मंत्रों की सिद्धियां प्राप्त कर चुके हैं। आप नाग वंश की रक्षा करें।'' उनकी प्रार्थना पर आस्तीक जनमेजय के यज्ञ में गए। अपने मंत्रों की शक्ति से सर्पों को यज्ञ की बलि चढ़ने से रोका, जिससे यज्ञ की अग्नि से नाग जाति नष्ट होने से बच गई।●

— ब्रह्मवैवर्त पुराण


चीटू-नीटू
यह चम्मच मुगलकाल का है। इससे बादशाह खाना खाते थे। नौ हजार रुपए.. एक ... नौ हजार रुपए.. दो...
नीलामी
दस हजार
कमाल है, बिलकुल हमारे चम्मच जैसा और कीमत दस हजार
मैल, मिट्टी से कुछ पुराना जरूर लगता था। क्यों न हम भी अपने चम्मच को तीन सौ साल पुराना बना लें...
चम्मच तो हो गया। देखो यह केतली भी कुछ कम पुरानी नहीं लग रही
मूर्ती की बाजू तोड़ दूं तो यह भी चार सौ साल पुरानी...
थोड़ा घिस कर, फाड़ कर, मैंने पिता जी का कुर्ता दो सौ साल पुराना...
मम्मी आ रही हैं, मैं चली
चीखने और चिल्लाने की आवाजों से लगता है, चीटू की पिटाई हो रही है
भैया, मंजाई और पिटाई के बाद तुम भी दो सौ साल पुराने दिखने लगे हो



शीर्षक बताइए

तीनों हम, खुश हरदम : इस चित्र के इसी तरह के कई शीर्षक हो सकते हैं। आप भी कोई अच्छा-सा शीर्षक सोचिए। पोस्टकार्ड पर लिखकर १० अप्रैल, १९८९ तक शीर्षक बताइए, नंदन मासिक, हिंदुस्तान टाइम्स हाऊस, कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली के पते पर भेज दीजिए। चुने हुए शीर्षकों पर इनाम दिए जाएंगे।

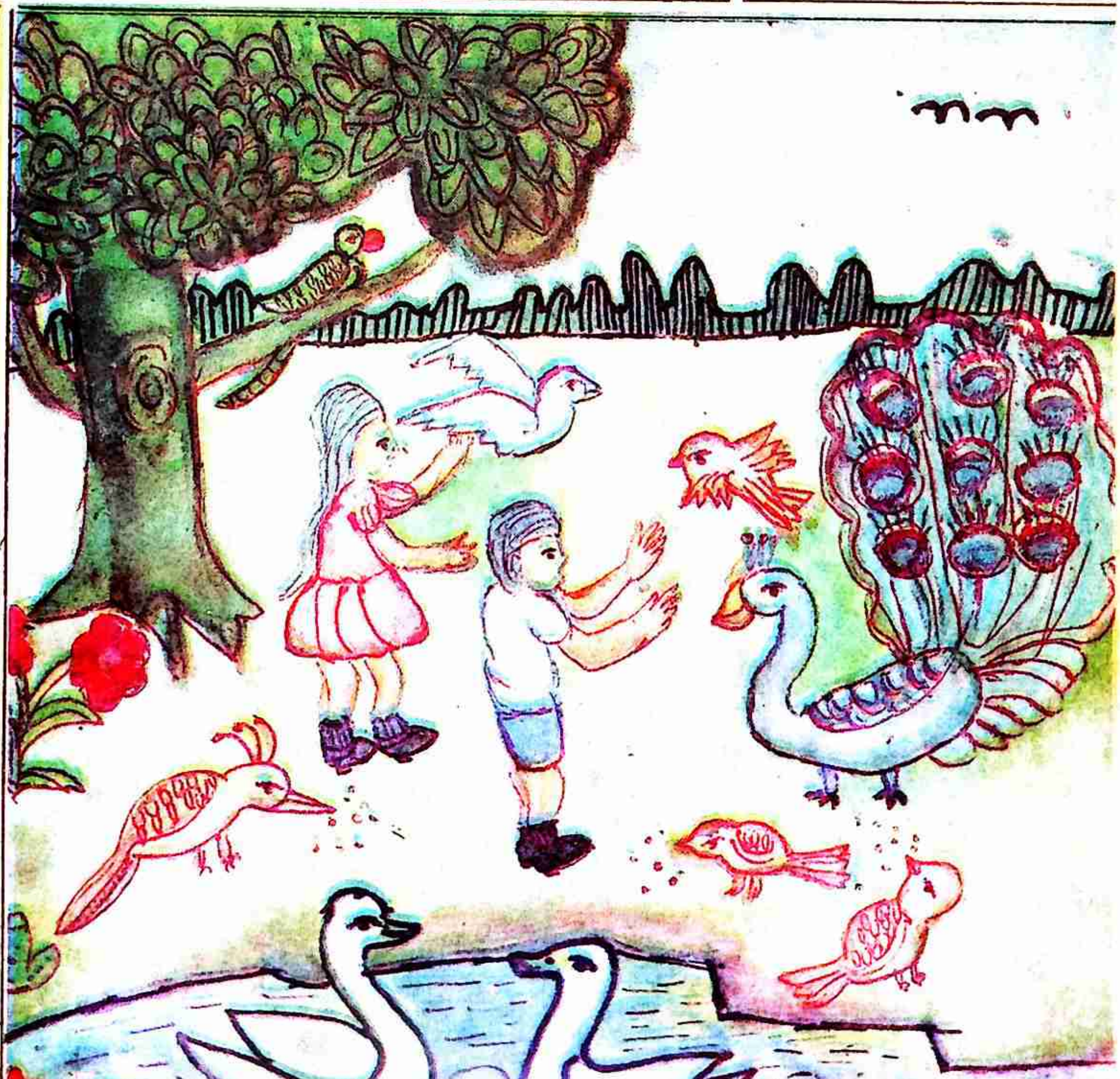
परिणाम : जून '८९

चित्र : देवराज अग्रवाल

पुरस्कृत चित्र

नंदन कुमार द्वारा श्री सुरेन्द्र लाल दास, चित्रगुप्त नगर पटना—८०००२०

इनके चित्र भी प्रशंसनीय रहे—संजू रानी अग्रवाल, रबूपुरा (बुलंदशहर); दिनेश मालवीय, खंडवा; आदित्य कुमार सिंह, भागलपुर; वंदना गुप्ता, कलकत्ता—७०००२९



बाल सभा


अंशुमान


दिव्या


ट्विंकल


अलका


जनिता

पत्र मिला

● बच्चों का नन्हा साथी 'नंदन' बच्चों के नैतिक, शारीरिक, मानसिक विकास में निरंतर अपना सक्रिय योगदान दे रहा है । **—मुकेशकुमार लखोटिया, किशनगढ़**

● 'दस घोड़े', 'हिरना आगे', 'अनोखा शाल', 'पीछे चलो' और 'राजमंत्र' जैसी कहानियां विशेष पसंद आईं । कृपया कविताओं की संख्या बढ़ाएं ।

—प्रेमशंकर प्रीति, सम्बलपुर

● रूस के प्रसिद्ध लेखक 'लेव ताल्सताय' पर 'चित्रकथा' तथा रंगीन झांकी 'कहो कहानी फूलों की' बेजोड़ थीं । इसके अलावा 'वांगची के बेटे', 'फिर फुर्र फुर्र' व 'फैसला' कहानियां अच्छी लगीं । मुखपृष्ठ भी बहुत आकर्षक था ।

—रोली पाठक, इलाहाबाद बैंक, झांसी

● 'नंदन' बाल मासिक के रजत जयंती वर्ष में प्रवेश करने के उपलक्ष्य में बधाई । 'पत्रिका' नवम्बर ६४ में शुरू हुई थी । 'नंदन' के अनेक अंकों के साथ प्रवेशांक आज भी मेरे संग्रह में सुरक्षित है । **—डा. श्रीप्रसाद, वाराणसी**

● फरवरी '८९ की सभी कहानियां रोचक व प्रेरणादायक रहीं । 'रसीद दो', 'सबसे बड़ी पूजा', 'मेहनत का सहारा' खूब रहीं । 'तेनालीराम', 'चीटू-नीटू' हमेशा की तरह अच्छे लगे । **—संजयकुमार मित्तल, आबू रोड**

● 'नंदन' में चित्रकथा बहुत अच्छी लगती है । लेकिन कुछ जासूसी कथाएं भी छापा करें । एलबम के पीछे आप कोई विज्ञापन छापा करें न कि कहानी ।

—राजेशकुमार गुप्ता, खंडार (राज.)

● पंद्रह वर्षों से यह पत्रिका हर बार लगातार पढ़ रहा हूं, मगर मेरा मन नहीं भरा ।

—कुलवंतसिंह राजू, रवी नगर, नई दिल्ली

● ताजा अंक बेहद अच्छा मुखपृष्ठ लेकर आया । कविताएं तथा ढेर सारी कहानियां, सभी एक से बढ़कर एक थीं ।

—रामगोपाल बंसल, अध्यक्ष-म. प्र. पत्र लेखक संघ, सब्जगढ़ (म. प्र.)

● पहले आप 'नंदन' में रंग भरो प्रतियोगिता छापते थे । पत्रिका में उस प्रतियोगिता की कमी निरंतर खलती है ।

—पंकजकुमार, पटना

इनके पत्र भी उल्लेखनीय रहे : रवींद्रसिंह राव, पूनाना (राज.); ललिताकुमार शर्मा, कटक; दिलीप दौलतराम, आर्वी (महा.) ।

आगामी अंक

मौसम गरमाया । नंदन लेकर ठंडक आया

● बच्चों को मिले बौने, बोलने वाले पंछी और... विश्व की महान कृति में **जी. ई. फैरो** के प्रसिद्ध उपन्यास की अद्भुत कथा पढ़िए

● **आजादी के लिए विदेशों में अलख जगानेवाले लाला हरदयाल— आठ बहुरंगी पृष्ठों में चित्र-कथा**

● बुद्ध पूर्णिमा के अवसर पर बोधगया का बुद्ध मंदिर : एलबम में रंगीन झांकी

● **सदाबहार कहानियों की रसधार और मजेदार गेय कविताएं**

● **बाबा खिचड़ीदास— घनश्यामदास बिड़ला की रोचक कथा ।** राजा ने कहा— 'महामंत्री से मिलना आसान नहीं ।'— डा. रणवीर रांग्रा की अनोखी इतिहास-कथा

● साथ में तेनालीराम, चीटू-नीटू आदि सभी स्तम्भ

अपना अंक आज ही सुरक्षित करा लें

नई पुस्तकें

भारतीय हरिण : लेखक : राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह; प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-११०००१; मूल्य : सात रुपए।

राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह वन्यजीवन के जाने-माने लेखक रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक 'भारतीय हरिण' इस विषय पर प्रामाणिक पुस्तक है।

हरिणों के समाज में मादाओं की प्रधानता है। मादाओं में जो सबसे अधिक डीलडौल वाली होती हैं, वह दल का नेतृत्व करती है। सभी उसके आदेश पर चलते हैं। इसके विपरीत नरों में कोई संगठन नहीं होता। किंतु नर और मादा चीतल एक झुंड में रहते हैं। लेखक ने हरिणों को दो श्रेणियों में बांटा है। पहली में काला हरिण, चिंकारा, नील गाय आदि। दूसरी में बारहसिंगा और चीतल, कस्तूरी मृग आदि। बारहसिंगा के सींग बारह तो होते ही हैं, अठारह भी होते हैं। प्रायः सभी हरिणों के सींग प्रति वर्ष वसंत में झड़ जाते हैं और फिर नए निकलते हैं।

पुस्तक अत्यंत उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक है। बच्चे इसे बार-बार पढ़ेंगे।

प्रेरक प्रसंग : लेखक : शुकदेव प्रसाद; प्रकाशक : पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-११०००६; मूल्य : पंद्रह रुपए।

लेखक ने पुस्तक को उपयोगी बनाने का प्रयास किया है। दार्शनिक-संतों, राजनीतिज्ञों, साहित्यकारों, वैज्ञानिक-आविष्कारकों और कलाकारों के प्रसंगों के साथ-साथ अन्य विभूतियों के प्रसंगों को भी शामिल करने का अच्छा प्रयास है।

किंतु अधिकांश प्रसंग बच्चों और अन्य पढ़ने वालों के मन को छू नहीं पाएंगे। संकलन करते समय अधिक सावधानी बरती जाती, तो पुस्तक की उपयोगिता ज्यादा बढ़ जाती। फिर भी इतने अधिक प्रसंग एक साथ पाकर पाठक इसे उपयोगी मानेंगे। कहीं-कहीं भाषा की भूलें भी हैं।

मां मुझको आवाज लगाना (कविता संग्रह); लेखिका : शकुंतला सिरोठिया; प्रकाशक : अनुभूति प्रकाशन, ५३ करनपुर, इलाहाबाद-२११००२; मूल्य : सात रुपए।

संग्रह की सबसे अच्छी, सबसे न्यारी और मन को मोहनेवाली कविता है— 'चोर कहीं मेरे अंदर भी'। संग्रह को देखते हुए यह कविता इसका अंश बिल्कुल नहीं लगती— सबसे अलग; आज के युग में बच्चों को न सिर्फ पसंद आने वाली, बल्कि उन्हें बिना कोरा उपदेश दिए, सन्मार्ग दिखलाने वाली है। 'निर्धन या धनवान' कविता अच्छी होते हुए भी जमती नहीं है। अन्य कविताओं को शामिल करके इसको पुस्तक का रूप मात्र देना ध्येय रहा होगा, ऐसा लगता है।

सांस्कृतिक धरोहर : लेखक : डा. रामलाल वर्मा; प्रकाशक : सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-११०००६; मूल्य पचीस रुपए।

पुस्तक मूलतः किशोरों के लिए है। अपने देश की संस्कृति और समाज के आचार-विचार को समझाने का अच्छा प्रयास है। कहानियों में प्राचीन काल के शूरवीरों की कहानियां मन को छूती हैं— दानशीलता की कहानियां अनुपम आदर्श और दूसरों के लिए कुछ करना ही मनुष्य का कर्तव्य है, ऐसा सिखलाती हैं।

आजादी की पुकार: लेखक:चक्रधर नलिन; प्रकाशक : कला प्रकाशन, पी. १० नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२, मूल्य : छह रुपए।

'आजादी की पुकार' आजादी की लड़ाई का एक प्रसंग प्रस्तुत करती है। अंग्रेज भारतीय समाज में फूट का बीज बोना चाहते हैं। कलेक्टर जेलर को आदेश देता है कि जेल में सभी मुसलमान एक साथ नमाज न पढ़ें। सब इकट्ठा होकर बगावत का झंडा उठा रहे हैं। कैदी विरोध नहीं करते हैं। मुसलमानों के साथ हिंदू भी शामिल होकर एकता का परिचय देते हैं।

बलिदानी भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद की गाथा पर आधारित है, जो देश के लिए अपना बलिदान करने में नहीं हिचकते। 'ईमानदार बालक'

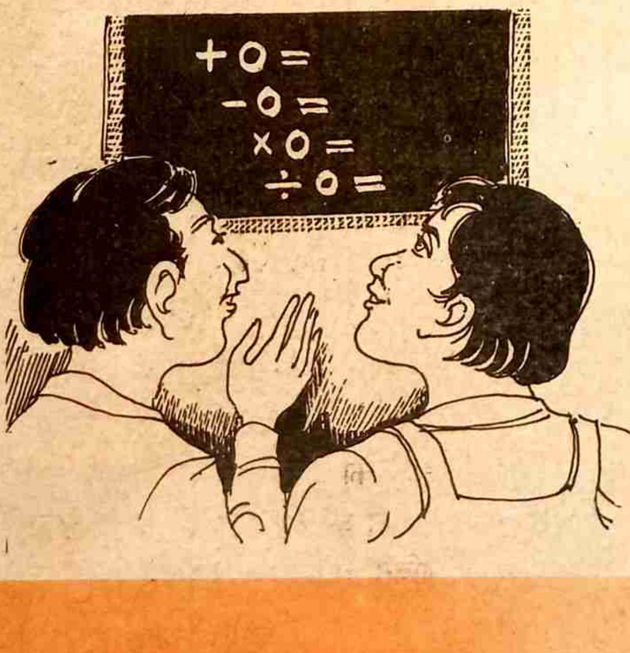
एक विद्यार्थी की ईमानदारी और परीक्षा में नकल न करने के संकल्प की कहानी है। नाटक अच्छे हैं। बच्चेको प्रभावित करेंगे। — **शंकर लाल मस्करा**

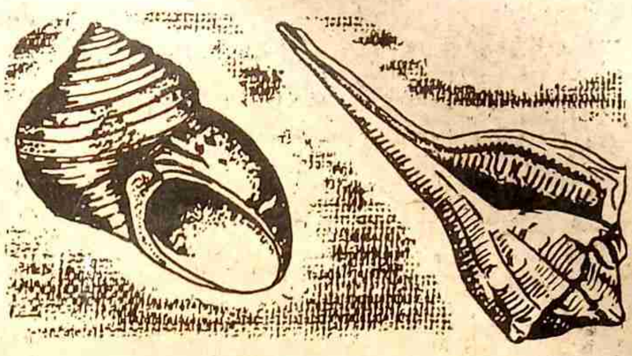
बातें रंग-बिरंगी

शून्य या जीरो : गणित के विकास में शून्य का विशेष महत्व है । बिना शून्य के आधुनिक गणित का विकास सम्भव नहीं था । एक से लेकर नौ तक के अंकों से अनेक संख्याएं निर्मित की जा सकती हैं, लेकिन शून्य के बिना इन संख्याओं को पूर्णता नहीं दी जा सकती ।

ईसा के जन्म से पहले भारत में हिंदुओं ने संख्याओं को लिखने का उचित तरीका विकसित कर लिया था, लेकिन उस समय तक भी शून्य का आविष्कार नहीं हुआ था। आविष्कार हुआ दूसरी-तीसरी शताब्दी में भारत ही में । ९०० ईसवी में अरब के व्यापारी इस पद्धति को यूरोप के देशों में ले गए । वहां यह हिंदू-अरबी पद्धति के नाम से विख्यात हुई । शून्य की खोज से बड़ी-बड़ी गिनतियां सम्भव हो सकीं ।

शून्य के कुछ विशेष गुण हैं । यदि इसे किसी संख्या में जोड़ या घटा दिया जाए, तो संख्या पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । किसी संख्या को शून्य से गुणा करने या विभाजित करने पर परिणाम अनंत हो जाता है । शून्य को किसी भी अंक से विभाजित करने पर परिणाम शून्य रहता है । शून्य के आविष्कार के बिना आधुनिक विज्ञान, उद्योग और व्यापार की कल्पना भी सम्भव न हो पाती ।





शंख : मंदिरों में और पूजा के अवसरों पर हमारे देश में शंख बजाने का चलन है । शंख की ध्वनि को शुभ माना जाता है । शंखों का आकार अलग-अलग होता है ।

शंख एक प्रकार के समुद्री जीवों के शरीर के खोल होते हैं । इन जीवों को मौलस्क कहते हैं । मौलस्क अपनी सुरक्षा के लिए शरीर के चारों ओर एक खोल का निर्माण करते हैं । ये खोल चूने के बने होते हैं । जैसे-जैसे मौलस्क के शरीर का आकार बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे यह खोल अधिक मजबूत और बड़ा होता जाता है । जब मौलस्क की मृत्यु हो जाती है, तो शरीर का खोल तैरता हुआ पानी के ऊपर आ जाता है । समुद्री लहरों के सहारे ये खोल किनारे तक आ जाते हैं । सीपी, कौड़ी और शंख—सभी इन जंतुओं के खोल होते हैं । मौलस्कों की ६०,००० से भी अधिक प्रजातियों का अध्ययन वैज्ञानिक कर चुके हैं ।

शंख या खोल की तीन परतें होती हैं । बाहर की परत बहुत चिकनी होती है, दूसरी परत चूने की होती है, तीसरी और निचली परत सीप जैसे पदार्थ की बनी होती है । शंखों पर कई रंग की धारियां होती हैं । ये धारियां और धब्बे मौलस्क प्राणियों में उपस्थित कुछ रंग-बिरंगे पदार्थों के कारण बन जाते हैं । इनसे शंखों की सुंदरता और भी बढ़ जाती है ।

शंखों और कौड़ियों का पुराने समय में मुद्रा के रूप में प्रयोग किया जाता था । छोटे-छोटे शंखों से गले की मालाएं बनाई जाती हैं । इनसे सजावट की वस्तुएं भी तैयार की जाती हैं । छोटी सीपों से बटन बनाए जाते हैं ।

—डा. सी. एल. गर्ग

पत्र - मित्र

सम्पादक, 'नंदन', नई दिल्ली-१

नाम ———————— आयु ————

पूरा पता ————————————

————————————

रुचि ————————————

पुस्तकें पढ़ने तथा लेखन में रुचि :

१. राजेश बब्बर, १५ वर्ष, कूपली वाया रामसिंहपुर, जि. श्रीगंगानगर (राज.); २. अभिषेक अग्रवाल, ११, सुशील जनरल स्टोर्स, तहसील रोड, पूरनपुर (पीलीभीत); ३. खोमलाल वर्मा, १७, द्वारा बी.एल. वर्मा, आजाद चौक, पाटन, जि. दुर्ग (म.प्र.); ४. विपिनकुमार वर्मा, १७, निकट जैनमंदिर, छोटा बाजार, खेकड़ा; ५. अनिलकुमार पोरवाल, १७, पंकज बर्तन भंडार, औरैया, इटावा; ६. अतुलकुमार, १०, साहेब गंज, सोनार पट्टी, छपरा ; ७. ब्रजराज मिश्र, १३, ग्रा. +पो. छिलपा, वाया अनूपपुर, जि. शहडोल (म.प्र.); ८. वीरेन्द्रकुमार सिंह, १६, ग्रा. सीरा, पो. शेवता, जि. गया (बि.); ९. नवनीतकुमार नीतू, १४, द्वारा राधाकांत सिंह, बाकरगंज, लहेरियासराय, दरभंगा (बि.); १०. अतुल्य नीरज, १७, द्वारा ए.एन. वर्मा, न्यू गोविंदपुर, आफिसर्स कालोनी, सोनारडीह, धनबाद (बि.); ११. संगीता रानी, १०, आर-जैड-४७/एफ धर्मपुरा कालोनी, नजफगढ़, नई दिल्ली; १२. चंचल कुमार, १०, देवप्रखंड कालोनी, औरंगाबाद (बि.); १३. मु. सबील अंसारी, १५ द्वारा मु. इसराफिल, पो. तीन पहाड़, जि. साहिबगंज।

खेल, संगीत तथा चित्रकला में रुचि :

१. राहुलकुमार शर्मा, १५ वर्ष, ३१३/६५ आर आनंद नगर, इंद्रलोक, दिल्ली; २. मंजरीनाथ, १२, द्वारा सत्यनारायण लाल, साधना कुटीर, चौधरी टोला, महेंद्रू, पटना; ३. अतुलकुमार, १३, २७४, पाटलीपुत्र कालोनी, पटना; ४. शिवकुमार रावत, १६, मेनरोड, बाजितपुर, मनीगाछी, दरभंगा (बि.); ५. कीर्तिकुमारी पाठक, १०, सतीशचंद्र पाठक, मुड़ियन का कुआं, दतिया (म.प्र.); ६. ब्रजेशकुमार, १२, द्वारा कामेश्वर प्रसाद, गोरडीहा लौज, मु. जनकपुर, जि. गया; ७. रामकृष्ण गुप्ता, १७, १६/१७४ मंडी सईद खां. आगरा; ८. सुविंदर बाजी, ७, सन ऐंस स्कूल, पटना सिटी; ९. मनोजकुमार सिंह, १६, इंदी बाजार, पटना सिटी; १०. अनुराग मौर्य, १६, द्वारा डा. रामफेर मौर्य, उपडाकघर, डोभी, जौनपुर (उ.प्र.); ११. कुमारी कवितारानी, १३, चाकुलिया, सिंहभूमि (बि.); १२. राजेश्वरकुमार व्यास, १५, द्वारा प्रेमस्वरूप व्यास, ईदगाह, बारी के बाहर, बीकानेर; १३. चंचल कुमार, १६, द्वारा अनिलकुमार श्रीवास्तव, हाई स्कूल पाड़ा, कटिहार; १४. सुशीलकुमार, कटीवाला, १७, राणी सती मार्ग, मुकुंदगढ़ मंडी; १५. अशोककुमार पटेल, १६, ग्रा. रसूलपुर, पो. मड़ियाहूं, जि. जौनपुर (उ.प्र.)।

डाक-टिकट संग्रह में रुचि :

१. विक्रम, १० वर्ष, ८४ एस.के. नगर, पटना; २. सतीश चौधरी, १७, द्वारा जीराजन सिंह चौधरी, मो. महाजनान, वसी किरतपुर, बिजनौर; ३. एस.एम. सनाउल्हा, १५, बोकारो स्टील प्लांट, मखदुमपुर, सिवनडीह; ४. मनीषकुमार अग्रवाल, १६, द्वारा अवधकुमार, ५५/१२२, जनरलगंज, कानपुर; ५. किशोरचंद्र साहू, १३, मु.+पो. लचरागढ़, जि. गुमला (बि.); ६. सुभाष गर्ग, १४, द्वारा दुर्गाप्रसाद गर्ग, १२ रवीन्द्र सारणी, मिडल ब्लाक-४, कलकत्ता; ७. आलोक कांबले, ९, आनंद नगर सीताबर्डी नागपुर; ८. अनुजकुमार, १३, द्वारा डा. चिंताहरण प्रसाद, राजेंद्रनगर रोड नं. १, पटना; ९. शैलेन्द्रसिंह, १४, सी-१९३, प्रशांत विहार, दिल्ली; १०. मोनिका, १२, सी-१/३९ एस.डी.ए., नई दिल्ली-१६; ११. अनुपम खोसला, १५, बिल्डिंग नं. ३-ए, फ्लैट नं. ३-सी, लिलुआ, हावड़ा।

□ □ □

रानी की जिद

—अविनाशचंद्र सेठी

एक था राजा वृष्यान। उसने नर्मदा के तट पर कठोर तप किया। देवता ने प्रसन्न होकर उससे वरदान मांगने को कहा। राजा चाहता था; उसके राज्य में सभी के साथ न्याय हो। मनुष्यों की भाषा वह जानता था। उनके दुखों को दूर करने का वह बराबर प्रयत्न करता रहता था, किंतु पशु-पक्षियों की व्यथा कैसे जाने? उसके मन की बात जान, देवता ने उसे पशु-पक्षियों की बोली समझ सकने का वरदान दे दिया। अब राजा उनकी बोली समझने लगा। मगर इस वरदान में एक शर्त थी। देवता ने कहा— "यदि तुमने इस बारे में किसी को कुछ भी बताया, तो तुम्हारी तुरंत मृत्यु हो जाएगी।"

एक दिन राजा-रानी भोजन करने बैठे। तभी राजा ने देखा—चींटी ने उसकी थाली से भोजन का एक कण उठाकर रानी की थाली में रख दिया। यह देखकर दूसरी चींटी बोली— "क्यों राजा के हिस्से का भोजन रानी को खिलाकर उसे पाप की भागी बना रही हो?"

यह सुनकर राजा को हंसी आ गई। रानी ने हंसी का कारण पूछा, तो राजा टाल गया। मगर रानी को जिद चढ़ गई। वह बार-बार हंसी का कारण बताने के लिए विवश करने लगी। राजा ने कहा—"देखो, जिद न करो। इस जिद से अनर्थ भी हो सकता है।"

रानी नहीं मानी। बोली— "चाहे कुछ भी हो जाए। आपको बताना ही पड़ेगा।"

राजा सोचने लगे— 'रानी को अगर कारण बताना ही है, तो किसी तीर्थ पर चलना चाहिए। वहां मृत्यु होगी, तो अगला जन्म सुधर जाएगा।'

बस, अगले ही दिन रानी को लेकर राजा तीर्थ की ओर चल पड़े। तीर्थ दूर था। रास्ते में राजा-रानी एक वृक्ष के नीचे रुके। चारों ओर हरी घास थी। पास ही बकरा-बकरी बैठे हुए थे। तभी बकरी ने बकरे से कहा—"चलो, टीले के पास जाकर हरी घास खाएंगे।"

बकरा बोला— "तू जा, मुझे आराम करने दे। मेरा पेट तो भरा है।" बकरी जिद करने लगी तो बकरा बोला— "देख, मैं तेरी एक नहीं सुनने वाला। मैं वृक्ष के नीचे बैठे राजा की तरह नहीं, जो रानी की जिद पूरी करने के लिए अपने प्राण गंवाने जा रहा है।"

यह सुनकर राजा स्तब्ध रह गया। सोचने लगा—'बकरा मुझसे अधिक विवेकी है।' राजा ने रानी से कह दिया— "मैं हंसने का कारण नहीं बताऊंगा।" कहकर राजा लौटने लगा। राजा का दृढ़ निश्चय जान, रानी भी चुप हो गई।

घाटा-पाटा

पति-पत्नी दोनों ही भगवान के परम भक्त थे। सुबह-शाम घंटों पूजा करते थे। एक बार पति को व्यापार में काफी घाटा उठाना पड़ा। वह चिंतित रहने लगा। खाना-पीना तो छूटा ही, पूजा-पाठ में भी मन नहीं लगता था। पूजा करने बैठते तो कुछ ही देर बैठ, उठकर चले जाते। पत्नी अभी भी बड़ी श्रद्धा के साथ भगवान की पूजा करती। उसे घाटा होने की चिंता नहीं थी। किंतु पति की चिंता से वह चिंतित हो उठी। सोचने लगी—'इन्हें चिंता से मुक्ति दिलानी चाहिए।'

एक दिन पत्नी ने अपने बाल बिखरा लिए। सफेद साड़ी पहनी और रोनी सूरत लेकर पति के पास पहुंची। देखकर पति हैरान। बोला— "क्या कुटुम्ब में कोई मर गया। ऐसा वेश क्यों बना लिया?"

पत्नी बोली— "हां, आपके भगवान मर गए।"

—"भगवान मर गए! क्या पागलपन की बातें करती हो। भला, भगवान भी कभी मर सकते हैं?"

पत्नी ने कहा— "अगर भगवान नहीं मर सकते, तो आप किस बात की चिंता करते हैं। भगवान हैं तो हमें चिंता करने की क्या जरूरत। घाटा हुआ है, तो लाभ भी होगा ही।"

सुनकर पति लज्जित हो गया। तुरंत उठा और सारी चिंता भूलकर भगवान की पूजा करने लगा।

चोर पकड़े

लंदन में एक चोर रहता था— ग्रेबी। वह चोरी इतनी कुशलता से करता था कि आज तक कोई उसे पकड़ नहीं सका था। सरकार ने घोषणा की— जो कोई ग्रेबी को पकड़ेगा, उसे भारी इनाम दिया जाएगा।

लंदन में ही एक बहुत धनी व्यापारी रहता था। ग्रेबी ने इस आदमी के बारे में बहुत सुना था। उसने उस आदमी के यहां चोरी करने की योजना बनाई। एक रात मौका देख, ग्रेबी उस धनी आदमी के घर में घुस गया। घर के सभी लोग गहरी नींद में सोए हुए थे। इसलिए ग्रेबी कमरों में आराम से घूमता रहा, लेकिन उसे कहीं तिजोरी दिखाई न दी। उसने घर की सारी चीजें उलट-पलट कर डालीं। घर का कोना-कोना छान मारा, मगर कहीं तिजोरी का पता न चला। ग्रेबी को कुछ और न सूझा, तो उसने उस धनी आदमी के इकलौते पुत्र स्टीफन को उठाया और अपने अड्डे पर ले आया।

जब स्टीफन की आंखें खुलीं, तो उसने अपने सामने दो अजनबी व्यक्तियों को बैठे देखा। ग्रेबी का साथी शैरी भी स्टीफन के जगने की राह देख रहा था।

— ''देखो, लड़के ! न तो यहां से भागने की कोशिश करना, न ज्यादा चालाक बनने की ! यदि तुम हमें अपने घर की तिजोरी का पता बता दो, तब हम तुम्हें छोड़ देंगे, नहीं तो...''

'नहीं तो ··' दोनों ने ऐसे कहा था कि स्टीफन बुरी तरह डर गया। उसकी समझ में न आया कि क्या करे ? अपने माता-पिता के बारे में सोचकर वह परेशान होने लगा।

उस पूरे दिन दोनों चोरों ने स्टीफन को कोठरी में बंद रखा। जैसे ही रात हुई, वे दोनों स्टीफन को लेकर उसके घर पहुंचे। स्टीफन के मुंह पर उन्होंने पट्टी बांध दी थी। घर में चारों ओर सन्नाटा था। स्टीफन उन्हें एक ऐसे कमरे में ले गया, जहां सभी कमरों के दरवाज़े खुलते थे। स्टीफन ने एक मूर्ति की तरफ इशारा करते हुए कहा— ''इसे घुमाने से तिज़ोरी का गुप्त दरवाजा खुल जाएगा।'' ग्रेबी और शैरी दोनों मिलकर ही मूर्ति को घुमा पाए। लेकिन यह क्या ! खतरे की घंटी बज उठी। स्टीफन के घर के सभी लोग दौड़े आए और चोर पकड़ लिए गए।

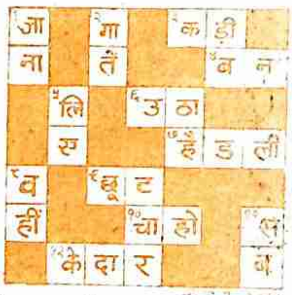
— अचला शर्मा, नई दिल्ली

इनकी कहानियां भी पसंद की गईं : पराग रघुनाथ वाघमारे, नागपुर; देवनारायण साह, खगड़िया; राजेश राजपुरोहित, बीकानेर।

नंदन

ज्ञान-पहेली २४२

परिणाम



सर्वशुद्ध हल : ६ : प्रत्येक को १६५ रुपए

१. राकेश त्रिपाठी, अशोकनगर, बशारतपुर, गोरखपुर (उ. प्र.); २. सौमित्रप्रताप सिंह, शक्तिनगर, संडीला, हरदोई (उ. प्र.); ३. पंकजकुमार तायल, दनकौर, बुलंदशहर (उ. प्र.); ४. निर्मला जैन, अलवर, (राजस्थान); ५. संतोषकुमार, श्रद्धानंद उपमार्ग, कुक्षी, धार (म. प्र.); ६. अणु, मुंगेर (बिहार)।

पचास पुरस्कार
चुटकुला प्रतियोगिता

आप कोई न कोई मजेदार चुटकुला लिख सकते हैं, तो अभी लिख डालिए। उसे नीचे लिखे पते पर भेज दीजिए। चुटकुला नकल किया या सुना-सुनाया न हो। चुने हुए पचास चुटकुले 'नंदन' में छपेंगे। प्रत्येक पर तीस रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कार के रूप में दी जाएंगी।

एक पाठक कितने भी चुटकुले प्रतियोगिता में भेज सकता है। पता है— **चुटकुला प्रतियोगिता, 'नंदन' हिंदुस्तान टाइम्स हाउस, १८-२० कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली।**

आप कितने बुद्धिमान हैं— उत्तर

१. बाईं ओर खड़े व्यक्ति के चश्मे का एक शीशा गायब है।
२. उसका सीधा कान छोटा है।
३. गैस सिलेंडर की नॉब बड़ी है।
४. उसके समीप रखी आरी का हत्था काला है।
५. कटघरे में बैठे भालू के दो हाथ हैं।
६. एक ब्लाक पर अंगरेजी का ए लिखा है।
७. सोफे की गद्दी मोटी है।
८. कप का हत्था दूसरे डिजाइन का है।
९. चित्र में बने पहलवान के शरीर पर पट्टा पड़ा है।
१०. लैम्प शेड की झालर टूटी है।

शीर्षक बताइए : परिणाम

इस बार तो नंदन के पाठकों ने बिलकुल अलग ढंग के, एक से एक खूबसूरत शीर्षक भेजे। फरवरी अंक में छपे रंगीन चित्र पर इन शीर्षकों को पुरस्कार के लिए चुना गया—

जब-जब भैया मुझे खिलाता,
खुशी-खुशी घोड़ा बन जाता।

— मुक्ता त्यागी, द्वारा योगेंद्र त्यागी, ग्रा. +पो. — सिसौना, जि. बिजनौर (उ. प्र.)।

घोड़ा हो या सवार,
हम पहुंचेंगे उस पार।

— मीनादेवी बंसल, फूकन विला, एस. आर. वोरा रोड, लाचित नगर, गुवाहाटी (असम)।

बहुत नाचा, बहुत खेला,
अब चला देखने मेला।

— संजयकुमार राठी, द्वारा नंदलाल झंवर, करन जी मंदिर की गली, पो. रतनगढ़, जि. चुरू (राज.)।

भैया चलना संभल-संभल,
जाऊं न कहीं मैं फिसल।

— राजकुमारी सीतलदास पुंशी, ईश्वर कृपा, सिंधी कालोनी, स्टेशन रोड, चालीसगांव (महा.)।

इनके शीर्षक भी प्रशंसनीय रहे— दिनेश खजूरिया, प्रतापगढ़ (जम्मू); महिमा गुप्ता, बंगलौर; अंजुलता श्रीवास्तव, हैदराबाद; सादिया अकील, बेतिया; पूनम, नई दिल्ली; दिव्य तिवारी, देहरादून; इंदु आनंद, हिसार; लालाकुमारी विश्वकर्मा, कटक (उड़ीसा)।

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से राजेंद्र प्रसाद द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित

कार्यकारी अध्यक्ष : नरेश मोहन

 रजि. नं. डी.-(सी)-१७१ आर.एन.आई. नं. १०५२५/६४